• वर्ष ६५ • अंक २३ • मूल्य ₹२०

दिसम्बर ( प्रथम ) २०२३

पाक्षिक

# परोपकारी

## ऋषि मेला- ध्वजारोहण

उद्घाटन सत्र में परोपकारिणी सभा के ट्रस्टी, संन्यासी, मुनि, ब्रह्मचारी तथा उपस्थित जनसमूह।

ऋषि मेले के अवसर पर 17 नवंबर 2023 प्रातः कालीन यज्ञ

ऋषि मेले में आयोजित अथर्ववेद परायण यज्ञ
ब्रह्मा - आचार्य ओमप्रकाश एवं वेदपाठी

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६५ अंक : २३

दयानन्दाब्दः १९९

विक्रम संवत् - मार्गशीर्ष कृष्ण २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

▪

सम्पादक

सत्यजित् आर्य

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन ( २० वर्ष ) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

# परोपकारी

## दिसम्बर प्रथम, २०२३

## अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| ०१. सनातन दयानन्द | सम्पादकीय | ०४ |
| ०२. एक पुरानी उलझन-४ | पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय | ०६ |
| ०३. ज्ञान सूक्त-०५ | डॉ. धर्मवीर | ११ |
| ०४. ऋषिराज के प्रेरक वचन:... | आ. रामनिवास गुणग्राहक | १४ |
| ०५. असंख्यात पवित्र कर्मों का निमित्त... | प्रो. नरेश कुमार धीमान् | १८ |
| ०६. उपनिषद् साहित्य में ईश्वर-चिन्तन | डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक' | २५ |
| ०७. संस्था समाचार | श्री ज्ञानचन्द | २९ |
| ०८. महर्षि दयानन्द जी सरस्वती | सुन्दरलाल चौधरी | ३० |
| * सृष्टि संवत् की एकरूपता | | ३१ |
| * परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट | | ३३ |
| ०९. संस्था की ओर से.... | | ३४ |


www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

# सनातन दयानन्द

महर्षि दयानन्द की चिन्तनधारा विशिष्ट चिन्तनधारा थी। वह चिन्तनधारा आज भी विशिष्ट है, यह कल भी विशिष्ट रहेगी। महर्षि दयानन्द ने उस समय प्रचलित धार्मिक-सामाजिक-राष्ट्रीय-मानवीय चिन्तनधारा को बदला, परिमार्जित किया, शुद्ध किया। सच्चे शिव की खोज में निकला मूलशंकर, मृत्यु के भय से निकलने को व्याकुल मूलशंकर, उसके सामने अन्य कोई लक्ष्य नहीं था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किये गये पैदल भ्रमण व विभिन्न यात्राओं ने उनको बहुत अधिक चिन्तन करने को बाध्य किया। भटकते-भटकते गुरु विरजानन्द दण्डी के द्वार पर पहुँचने तक स्वयं को जानने की तड़प भी विकसित हो चुकी थी। गुरु विरजानन्द दण्डी के पास रहते हुए चिन्तनधारा में वैदिक व आर्ष ज्ञान जुड़ता चला गया। गुरु दक्षिणा या कहें गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर समाज में उतरे विद्याव्रत स्नातक दयानन्द ने विभिन्न अतिप्राचीन, प्राचीन व प्रचलित ग्रन्थों का आलोडन-विलोडन-विश्लेषण करते हुए अपनी चिन्तनधारा को उस धार तक पहुँचाया जिसने प्रचलित धार्मिक-आध्यात्मिक-सामाजिक-राष्ट्रीय-मानवीय-चिन्तनधाराओं को सहस्राब्दियों बाद पूरी तरह छानने-फटकारने की ओर प्रबल ध्यान आकर्षित कराया।

भारत या कहें आर्यावर्त में प्रचलित अधिकांश विचारधारायें जिस भी रूप में थीं, वे अपने को वेद व प्राचीनता से जोड़े रखते हुए चल रही थीं। भारत या अन्य देशों की विविध विचारधाराएँ वेद व ऋषियों को अपना आधार न मानते हुए भी चल रही थीं। आधुनिकता का युगीन प्रभाव मानव पर पड़ रहा था। आधुनिक शिक्षा-विज्ञान उसे प्रभावित कर रहे थे। विभिन्न विचारधाराओं में परस्पर श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता उचित-अनुचित का संघर्ष चल पड़ा था। 'प्राचीन' वह चाहे जिस विचारधारा का हो और 'आधुनिक' वह चाहे जिस देश का हो, आमने-सामने आ चुके थे। प्राचीन-आधुनिक में से कौन-कितना सही या गलत है, यह चिन्तन उभार ले रहा था। प्राचीन के पक्षधर उसका गुणगान कर रहे थे व आधुनिक के दोषों से सावधान कर रहे थे। आधुनिक के समर्थक उसका गुणगान करते हुए प्राचीन का उपहास कर रहे थे। समाज में प्राचीन विचाराधाराओं में परिवर्तन और आधुनिक विचारधाराओं में प्राचीन का समावेश करतीं अनेक नई चिन्तनधाराएँ पनप व विकसित हो रहीं थीं। सच्चे शिव की खोज में निकाला मूलशंकर, मृत्यु-भय से उभरने के प्रयास में स्वयं को जानने वाला दयानन्द भी इससे अपरिचित नहीं था।

क्या कोई उचित-समुचित विचार-ज्ञान केवल प्राचीन होता है? क्या कोई अन्धविश्वास रहित विचार-ज्ञान केवल आधुनिक होता है? यह बड़ा प्रश्न था व है। प्राचीनता से जुड़े थे ईश्वर-वेद-ऋषि आदि जिनकी प्रामाणिकता प्रबलता से व्यापक स्वीकार्यता रखती थी। आधुनिकता से जुड़े थे नये प्रबुद्ध बुद्धिमान् वैज्ञानिक व विभिन्न विकसित यन्त्र-उपकरण, जो प्रत्यक्ष प्रमाण की प्रबल स्वीकार्यता का आधार लिए थे। इन में से उचित-अनुचित का निर्णय कर उचित-शुद्ध विचारधारा समग्र रूप से प्रस्तुत कर देना सामान्य व्यक्ति के लिए असम्भव-सा था। इसके लिए प्रखर तीव्र बौद्धिक व आध्यात्मिक क्षमता से युक्त व्यक्ति आवश्यक था। साथ ही ऐसा व्यक्ति जो तीनों ऐषणाओं पुत्रैषणा-वितैषणा-लोकैषणा से अप्रभावित हो। ऐसा व्यक्ति जो परिवार के मोह-राग से ऊपर उठा हो, जिसे सांसारिक ऐश्वर्य-वैभव की कामना दबाती न हो, जिसे यश-प्रशंसा-पहचान के वेग डिगा न सकते हों, वह आवश्यक था।

उस व्यक्ति के आने को एक संयोग मात्र कहें या तत्कालीन व भावी मनुष्यों का सौभाग्य कहें या इस पृथ्वी को उस ज्ञान-प्रकाश से युक्त करने की ईश्वर की

व्यवस्था, जिसमें तदनुकूल कर्म-भोग के लिए आत्माओं को मानव शरीर में भेजा जा सके या भेजा जाना था? जो भी हो, पर ऐसा व्यक्ति आया, विकसित हुआ और जितना कर सकता था अपना कार्य करके चला गया। तब से लेकर आज तक प्रबुद्ध मानव विचारते रहे, वह दयानन्द क्या कर गया? कैसे कर गया? वह प्राचीन था या आधुनिक? वह भूतकाल की ज्ञान-परम्परा से प्रभावित था या तत्कालीन नवीन विज्ञान से अनुप्राणित ज्ञान-परम्परा से प्रभावित? उसने प्राचीनता में आधुनिकता मिलाई या आधुनिकता में प्राचीनता मिलाई? उसकी विचारधारा प्राचीन थी या आधुनिक? उसके विचार पहले प्रासंगिक थे या आज भी प्रासंगिक हैं? उसके विचार भविष्य में प्रासंगिक रह पायेंगे या विलीन हो जायेंगे?

भाषा व वेश-भूषा से प्राचीन दिखने वाला व्यक्ति, प्राचीनता या परम्परा के नाम से चल रही बहुत-सी बातों को अन्धविश्वास व अज्ञान कहने से आधुनिक दिखने वाला व्यक्ति, वास्तव में है क्या? प्राचीन है या आधुनिक? परम्परा का अनुयायी या परम्पराओं से ऊपर उठकर सोचने वाला खुले मस्तिष्क का व्यक्ति? इन सब प्रश्नों-जिज्ञासाओं-आशंकाओं का कोई एक पक्षीय उत्तर न था, न है, न होगा। जिन्होंने महर्षि दयानन्द को केवल प्राचीन व परम्परा का अनुयायी माना उन्हें महर्षि के विचारों ने असत्य सिद्ध कर दिया, या वे अपने मानने को सत्य सिद्ध नहीं कर पाये। जिन्होंने महर्षि दयानन्द को केवल आधुनिक विचारधारा वाला माना या वैसा प्रस्तुत कर निन्दित करने का प्रयास किया, वे तो अपने विचार अधिक बढ़ा ही नहीं पाये, अपने प्रयासों को स्वयं शिथिल करते चले गये, अपने पर प्रश्न करने को बाध्य हुए कि हमने यह कह कर अपनी अज्ञानता को ही तो प्रकट नहीं कर दिया?

महर्षि दयानन्द की चिन्तनधारा विशिष्ट चिन्तनधारा थी। वह इतनी शुद्ध-पवित्र थी, है व रहेगी कि उसे किसी एक कालखण्ड की कहना, नासमझी होगी। वह चिन्तनधारा प्राचीन भी थी, वह चिन्तनधारा आधुनिक भी है, वह चिन्तनधारा भविष्य की भी है। सांच को आंच नहीं। सत्य विचारधारा को किसी काल का भय नहीं होता। कोई आंच नहीं जो सांच को जला सके। जिनकी सांच को परखने की क्षमता विभिन्न ऐषणाओं के कारण मन्द हो चुकी है, उन्हें छोड़ दें, वे तो निर्णय करने के पात्र ही नहीं हैं। उनकी दृष्टि में तो महर्षि दयानन्द आज के या भविष्य के युग में अप्रासंगिक हो चुके हैं या विलुप्त हो जायेंगे। जिनकी सांच को परखने की क्षमता प्रखर है, कुन्द नहीं पड़ी है, वे महर्षि दयानन्द को न मानने वाले ही क्यों न हों, पर महर्षि दयानन्द की चिन्तनधारा को सदा नूतन-नवीन-अद्यतन-आधुनिक मानते रहेंगे।

जो प्राचीनकाल में भी नूतन-नवीन-अद्यतन-आधुनिक थी, जो आज भी नूतन-नवीन-अद्यतन-आधुनिक है, जो भविष्य में भी नूतन-नवीन-अद्यतन-आधुनिक रहेगी, वह त्रिकाल सत्य चिन्तनधारा न मात्र भूत की थी, न मात्र वर्तमान की है, न मात्र भविष्य की होगी। वह तो सदा थी, सदा रहेगी। वह तो सदातन है, सदा रहने वाली है, सनातन है। महर्षि दयानन्द एक व्यक्ति, एक महापुरुष, एक ऋषि, एक संन्यासी, एक सन्त थे जो जन्म के बाद मृत्यु को भी प्राप्त हुए। शरीर उनका सबकी तरह नश्वर था, एक कालखण्ड से युक्त था। उनका नाम भी कुछ अधिक किन्तु सान्त काल तक रहने वाला है। पर जिस चिन्तनधारा ज्ञानप्रकाश ने उसे वैशिष्ट्य प्रदान किया, जिससे मूलशंकर महर्षि दयानन्द के रूप में परिणत हुए, वह ज्ञान-प्रकाश तो सनातन है। उस सनातन ज्ञान-प्रकाश से युक्त महर्षि दयानन्द सनातन के विशिष्ट प्रतीक हैं। वे सनातन से युक्त हैं, वे सनातन हैं, सनातन दयानन्द हैं। तप से उत्पन्न हुए, तप से विभूषित हुए, महर्षि दयानन्द।

**तपसो जातं तपसो विभूतम्।** ऋग्वेद १०.१८३.१

**- मुनि सत्यजित्**

# एक पुरानी उलझन ( ४ )

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

**टिप्पणी : संस्कार विधि के कुछ स्थलों को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय के लिखने के पश्चात् यह चर्चा अधिक प्रसृत हुई। आर्यजगत् के प्रमुख शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमरसिंह ने उपाध्याय जी के लेख के उत्तर में लेख लिखकर समाधान प्रस्तुत किया था। लगभग ६० वर्ष पूर्व का यह लेख यथातथ रूप में पुनः प्रकाशित है - सम्पादक**

**पिछले अंक का शेष भाग....**

श्री पण्डित रामावतार जी शर्मा पंचतीर्थ-

''**चार मन्त्र और तीन समिधायें**''? सज्जनों! ७ फरवरी सन् १९६० के आर्य मित्र में-''एक पुरानी उलझन'' नामक शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसके लेखक हैं आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान्- श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय। उस लेख का सार अंश यह है कि -स्वामी दयानन्द सरस्वती की बनाई हुई संस्कार विधि में यह विधि प्रक्षिप्त है कि -''**अयन्त इध्म आत्मा...**'' इस मन्त्र से प्रथम समिधा अग्नि में डालनी चाहिए। हस्तलिखित मूल पुस्तक में चार मन्त्रों से तीन समिधाओं का प्रयोग नहीं है। अपितु तीन मन्त्रों से ही तीन समिधाएं डालने का विधान है। आपने उन तीन मन्त्रों का भी उल्लेख किया है, जिनसे समिधा डाली जानी चाहिए, ये मन्त्र हैं (१) ''**समिधाग्निं दुवस्यत...**'' इससे प्रथम तथा ''**सुसमिद्धाय शोचिषे...**'' इससे दूसरी समिधा, और ''**तन्त्वा समिद्भिः...**'' से तीसरी समिधा अग्नि में चढ़ाना ही विनियोग के अनुकूल है। (२) शतपथ ब्राह्मण का भी इसी प्रसंग में आपने प्रमाण देकर तीन मन्त्रों का मण्डन किया है। (३) ''**अयन्त इध्म आत्मा...**'' यह वेद मन्त्र भी नहीं है। इसलिए इसका परित्याग कर देना चाहिए (४) उसका विनियोग केवल अगली पाँच घृत की आहुतियों के लिए हुआ है, समिधा के लिए नहीं। (५) तीसरा हेतु आपने दिया है कि विनियुक्त तीनों मन्त्र या ऋचायें समिद्वती हैं। ''**अयन्त...**'' यह समित् शब्द वाला मन्त्र नहीं है। अर्थात् जिस मन्त्र का जिस कृत्य में विनियोग हो उस मन्त्र में कोई सादृश्य होना चाहिए। इसी में विनियोग की रूप-समृद्धता समझी जाती है। रही ''समिधाओं'' की बात? समिधाओं के सम्बन्ध में अनेक मतभेद दृष्टिगोचर होते हैं। ये मतभेद, शाखा भेद के कारण से हैं, ऐसा अनुमान है। गृह्य-सूत्रों में देखा जाता है कि कहीं ''**अनुक्तमन्त्रतो ग्राह्यम्**'' के अनुसार दूसरी शाखा का प्रमाण मानकर अपना गृह्यकार्य सुसम्पन्न करते हैं और कहीं उनका परित्याग भी करते हैं। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में लिखा है कि ''**पालाशीं समिधमादधाति, एकां द्वे तिस्रो वा**'' इस प्रमाण से पलाश की एक, दो अथवा तीन समिधाएं होनी चाहिएँ। इस स्थल में एक, दो और तीन संख्यावाचक शब्द देकर यह निर्देश किया गया है कि तीन ही समिधाएं हों, यह कोई आवश्यक नहीं है, किन्तु तीन होने में कोई दोष भी नहीं ।इसी ग्रन्थ में एक और प्रमाण है जिससे पांच समिधाओं का संकेत मिलता है। यथा- ''**यदग्ने यानि कानि चेति पञ्चभिः प्रति मन्त्रम् अग्निषु इध्मान् आदधाति**'' इस प्रमाण में पांच संख्या का स्पष्ट निर्देश है। पंचदश समिधायें भी होती हैं। इस प्रकार समिधा भेद है। संस्कार विधि के अग्न्याधान के प्रसंग में तीन समिधाएं मानी गई हैं।

**मन्त्रभेद**- कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे समिधा चढ़ाने के मन्त्रों में भी भेद दृष्टिगोचर होता है। यहां वैखानस श्रौतसूत्र का प्रमाण द्रष्टव्य है- ''**तिस्रः समिधोऽभ्यज्य समिधाग्निं दुवस्यत, उपत्वाग्ने हविष्मतीः, तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरः इति तिसृभिः**

**गायत्रीभिः अग्नावादधाति।**'' इन गायत्री छन्दों वाली तीन ऋचाओं से तीन समिधाएं घी में डुबो कर अग्नि में आधान करता है। इस प्रमाण में पाठकों को एक भेद प्रतीत होता है, वह यह कि यहां ''**सुसमिद्धाय शोचिषे**'' इस मन्त्र के बदले में एक अन्य मन्त्र लिया गया है । मन्त्र का यह परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है। अनुमान यह है कि इस विनियोजक की दृष्टि से यह मन्त्र समिधा चढ़ाने के लिए उपयुक्त नहीं है। अभी तक विचारने पर एक ही कारण समझ में आता है कि, इस मन्त्र में '**समित्**' शब्द नहीं है। इस मन्त्र का पद पाठ इस प्रकार है-''**सु। सम्। इद्धाय। शोचिषे। घृतम्। तीव्रम्। जुहोतन। अग्नये। जातवेदसे**''। इस मन्त्र का प्रवाह अथवा झुकाव देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस मन्त्र से समिधा के बदले घृत की आहुति देनी चाहिए। क्योंकि पाठक ध्यान देकर देखें तो यही मालूम होगा कि ''**घृतं तीव्रम् जुहोतन...**'' अर्थात् गर्म घी का होम करो। इस मन्त्र का भावार्थ यही है कि प्रखर अग्नि में गर्म घी का होम करो। यहाँ यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि समिदाधान के मन्त्रों में परिवर्तन की एक परम्परा है। इससे अपूर्वता की सिद्धि के अतिरिक्त कुछ और नहीं कहा जा सकता। वैखानस श्रौतसूत्र में समिदाधान के मन्त्रों के छन्दों का भी विचार किया गया है। कहा गया है कि गायत्री छन्दों वाली ऋचाओं से ब्राह्मण, त्रिष्टुप् छन्द की ऋचाओं से क्षत्रिय तथा जगती छन्द की ऋचाओं से वैश्य समिदाधान करे। बाराह श्रौतसूत्र में वर्ण क्रम से समिदाधान का मण्डन किया गया है। यथा-

**प्रवोवाजा अभिद्यव इति गायत्रीभिः ब्राह्मणस्य। आत्वाजिघर्मि, आविश्वतः यस्ते अद्योति राजन्यस्य। सप्तते अग्ने, जनस्य गोपाः, उपक्षरन्ति सिन्धवः इति वैश्यस्य**'' इन प्रमाणों पर ध्यान देने से पाठक यह समझ सकेंगे कि जहाँ भिन्न-भिन्न छन्दों का वर्णक्रम से विधान किया गया है, वहाँ मन्त्र स्वतः भिन्न हो गए हैं एवं क्रम से मन्त्रों का भेद सिद्ध होता है। संस्कार विधि में भी मन्त्रभेद है। शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों के विनियोग के अनुसार जहाँ समिदाधान के मन्त्र संगृहीत हैं, वहाँ श्रौत और गृह्य ग्रन्थों का भी आश्रय लिया गया है।

**अभिमत** अब मैं यह विचार करना चाहता हूँ कि, चार मन्त्रों को पढ़कर तीन समिधाएं डालने का कहीं विधान भी है अथवा नहीं? संस्कार विधि में स्थान स्थान पर सांख्यायन सम्प्रदाय के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। गर्भाधान प्रकरण में- ''**वायो, चन्द्र, सूर्य प्रायश्चित्ते**'' आदि मन्त्र सांख्यायन गृह्यसूत्र में भी हैं। चूड़ाकरण संस्कार के प्रकरण में **ओषधे त्रायस्वैनम्**'' यह मन्त्र भाग भी उसी सम्प्रदाय का है। सांख्यायन गृह्य-संग्रह की निम्न पंक्तियाँ चार मन्त्रों को पढ़कर तीन समिधायें डालने का स्पष्ट संकेत करती हैं- ''**आश्वत्थीस्तिस्रः समिधोऽभ्यज्य समिधाग्निं दुवस्यत, सुसमिद्धाय शोचिषे, तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरः, उपत्वाग्ने हविष्मतीः इत्येतासाम् चतसृणाम् ऋचाम् प्रथमया समिधमाधाय द्वितीयां जपति, ततः तृतीयाचतुर्थीभ्याम्**''-**यथासंख्यं समिधावाधाय**''। अर्थात् पीपल की तीन समिधाओं को घी में डुबोकर, इन चार ऋचाओं में पहली ऋचा से एक समिधा अग्नि में डालकर दूसरी ऋचा अर्थात् ''**सुसमिद्धाय शोचिषे**'' इस मन्त्र का केवल जप अर्थात् पाठ मात्र करता है। तदनन्तर तीसरी और चौथी ऋचाओं से क्रमशः दूसरी और तीसरी समिधाएं चढ़ाता है। सांख्यायन गृह्य-संग्रह के इस स्थल पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिन दो मन्त्रों से एक समिधा डालने का संस्कार विधि में विधान है, उन्हीं दो मन्त्रों से एक समिधा अग्नि में चढ़ाने का यहाँ भी विनियोग है। भेद केवल प्रथम और द्वितीय समिधा का है। इन पंक्तियों में '**चतसृणाम् ऋचाम्** और **तिस्रः समिधः**'' ये दो संख्याएं महत्त्वपूर्ण हैं।

यदि संस्कार विधि के विधान से इस विनियोग की तुलना की जाय तो दोनों में कुछ भेद प्रतीत होगा, किंतु

वह भेद भी महत्त्वपूर्ण ही है। संस्कार विधि में विनियुक्त तीन मन्त्र यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में ही हैं। यह भूल है कि यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के ये मन्त्र हैं। पुस्तक देख लेने से ही इस का निर्णय हो जायेगा। प्रस्तुत में यह चौथा मन्त्र "**उपत्वाग्ने**" भी उसी स्थल का है। परन्तु यह मन्त्र संस्कार-विधि में नहीं है। इसके बदले में वहां "**अयन्त इध्म आत्मा...**" यह मन्त्र स्वीकृत है, जिससे मन्त्रों की चार संख्यायें पूर्ण होती हैं। "**उपत्वाग्ने हविष्मतीः...**" यह मन्त्र नहीं लेने का कारण यह है कि इस मन्त्र में वर्णित रीति से समिधा हविष्मती चाहिए। उनकी दृष्टि से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि हविष्मती समिधा साधिका के स्थान में बाधिका सिद्ध हो सकती है।

याज्ञिक प्रक्रिया का वैदिक दृष्टिकोण यह है कि-

(१) "**समिधाग्नि दुवस्यत**" सर्वप्रथम समिधा से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए। (२) तदनन्तर "**घृतैर्बोधयतातिथिम्**" घी से अग्नि को प्रखर करना चाहिए। (३) अन्त में "**आस्मिन् हव्या जुहोतन**" अग्नि में हविष्य का होम होना चाहिए। हविष्य के होम की तीसरी स्थिति है जब अग्नि के बुझ जाने की सम्भावना ही नहीं हो। वर्तमान में यदि "**उपत्वाग्ने हविष्मतीः...**" इस मन्त्र से हविष्य मिश्रित समिधा अग्नि में चढ़ाई जाय तो अग्नि के बुझ जाने की पूरी सम्भावना रहती है। यदि हविष्य मिश्रित समिधा के बदले में केवल घृताक्त (घी में डुबोकर) समिधा इस मन्त्र से चढ़ाई जाय तो वह मिथ्या प्रयोग होगा, क्योंकि मन्त्र कहता है कि घी और हविष्य दोनों पदार्थों से युक्त समिधा चाहिए। हविष्य के साथ समिदाधान से अग्नि में प्रखरता कभी नहीं आ सकती। अग्नि के सबल हो जाने पर ही "**हविष्यान्नस्याग्नौ जुहुयात्**" इत्यादि गृह्य-ग्रन्थों के प्रमाणों से हलुआ अथवा खीर आदि का होम उचित होगा। यही कारण है कि संस्कार विधि में यह चौथा मन्त्र नहीं लेकर "**अयन्त...**" यह मन्त्र समिदाधान का प्रथम मन्त्र स्वीकार किया गया है।

**अयन्त इध्म आत्मा**- इसके आगे पाठकगण इध्म शब्द वाले "**अयन्त इध्म आत्मा...**" इस मन्त्र के ग्रहण के औचित्य पर विचार करें।

**मिथ्या अभियोग**- उपाध्याय जी ने अपने दूसरे हेतु में यह लिखा है कि समिधा के तीन मन्त्र यजुर्वेद के पहले अध्याय के प्रथम तीन मन्त्र हैं, वहीं से लिए गए हैं। उनमें "**अयन्त इध्म...**" नहीं है। यह भूल है कि ये मन्त्र यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम तीन हैं। अब उनमें "**अयन्त इध्म...**" नहीं है, यह मिथ्या अभियोग है। स्वामी जी ने अथवा किसी ने कभी भी ऐसा नहीं माना कि "**अयन्त इध्म...**" यह यजुर्वेद का मन्त्र है और यह वहां का ही है जहां "**समिधाग्नि दुवस्यत...**" आदि मन्त्र हैं। आप आगे लिखते हैं कि "**न यह वेद मन्त्र ही है।**" यह वेद मन्त्र नहीं है इसमें किसको आपत्ति हो सकती है? परन्तु प्रश्न यह है कि वेद मन्त्र नहीं होना यदि इस मन्त्र के परित्याग का कारण है तो इस हेतु से सब के सब वेद मन्त्र से भिन्न मन्त्र आक्रान्त हो जाते हैं। उनमें "**यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचम्...। ये ते शतम्...। अयाश्चाग्ने...**" आदि सैकड़ों मन्त्र छाँट देने पड़ेंगे अथवा यह मान लेना पड़ेगा कि गृह्य कार्यों में वेद मन्त्रों के साथ-साथ गृह्य मन्त्रों का होना भी अपरिहार्य है, उनको निकाला नहीं जा सकता। अत एव "**अयन्त इध्म...**" इस मन्त्र को वेदमन्त्र नहीं होने पर भी छोड़ा नहीं जा सकता है।

**अव्यवस्था**- वेद मन्त्र कहने मात्र से अव्यवस्था हो जाती है। क्योंकि जल-सिंचन के चार मन्त्र हैं, उनमें एक ही मन्त्र "**देव सवितः प्रसुव...**" वेद का है, शेष तीन श्रौत और गृह्य मन्त्र हैं। यदि श्रौत और गृह्य मन्त्र छोड़ दिए जाएँ, तो कोई हानि भी नहीं होती है। कारण कि जल का सेचन ही मुख्य प्रयोजन है। वह इस एक ही मन्त्र से सिद्ध हो जाता है। अर्थात् चारों दिशाओं में इस एक ही मन्त्र से, उसमें भी वेद मन्त्र से ही कार्य पूरा हो

जाता है। तीन मन्त्रों के पाठ का काल बच जाएगा। उसका उपयोग किसी और विषय में हो सकता है। हमको तो पूरा अधिकार है कि उन सब मन्त्रों को मानें जिनका विभिन्न कार्यों में विनियोग है। संस्कार विधि को मानते हुए यह प्रश्न ही नहीं उठता कि अमुक वेद मन्त्र नहीं है, इसलिए उसका प्रयोग नहीं होना चाहिए। आगे आप कहते हैं कि "उसका विनियोग केवल अगली घृत की ही पाँच आहुतियों के लिए हुआ है।" मैं जानना चाहता हूँ कि यदि घृताहुति के लिये इसका विनियोग है तो इस समय यह वेद-मन्त्र कैसे हो गया कि घृताहुतियां दी जायें? अन्यञ्च इस मन्त्र में घृत शब्द के सादृश्य का वाचक शब्द होना चाहिये, जिससे विनियोग की रूप-समृद्धता सिद्ध हो सके। ऐसा इस मन्त्र में कोई शब्द नहीं है। सम्पूर्ण मन्त्र आर्य मात्र को कण्ठस्थ है। उसका पद-पाठ भी इस प्रकार से है। "**अयम्। ते। इध्म। आत्मा। जातवेदः। तेन। इध्यस्व। वर्धस्व। च। इद्ध। वर्धय। च। अस्मान्। प्रजया। पशुभिः। ब्रह्मवर्चसेन। अन्नाद्येन। सम्। एधय स्वाहा**" इसमें घृत शब्द अथवा उसका अर्थ करने वाला कोई शब्द नहीं है। मैं नहीं समझता कि ऐसी अवस्था में घृताहुति के सम्बन्ध से भी उपाध्याय जी इस मन्त्र का परित्याग करने के लिये उद्यत होंगे। किन्तु विनियोग की रूप-समृद्धता समता में है, विषमता में नहीं। अनेक वेद मन्त्र इस मन्त्र के स्थान में घृत की आहुतियों के लिये उपयुक्त हो सकते हैं।

**समिद्वती ऋचा**- तीसरे हेतु में आपने लिखा है कि ये तीनों ऋचायें समिद्वती हैं अर्थात् इनमें समित् शब्द है किन्तु ऊपर पद-पाठ देकर मैंने स्पष्ट कर दिया है कि "**सुसमिद्धाय...**" मन्त्र या ऋचा समिद्वती नहीं है। इसलिये समिदाधान के लिये समिद्वती युक्ति से यह सिद्ध नहीं होती, इसके विपरीत '**अयन्त इध्म...**' मन्त्र में समित् शब्द का पर्यायवाचक इध्म शब्द पुकार कर कह रहा है कि जब तक मेरी सत्ता इस मन्त्र में है तब तक समिदाधान से मेरा निवारण किसी शक्ति से नहीं हो सकता है। कोई शक्ति मुझको इस विधान से नहीं रोक सकती है। मेरा ऐसा विश्वास है कि विनियोग के अनुसार "**सुसमिद्धाय...**" इस मन्त्र से समिदाधान की प्रक्रिया अयुक्त नहीं है किन्तु समिद्वती ऋचा का होना अनिवार्य मानने वाले के लिये दो ही मार्ग हैं। या तो समिद्वती ऋचा नहीं होने के कारण इस मन्त्र का परित्याग कर दिया जाय अथवा यह मान लिया जाय कि समिदाधान में समिद्वती ऋचा का होना अनिवार्य नहीं है। "**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**" इसलिये "**उभयतः पाशा रज्जुः।**" आपने अपने कचालु साहित्य के वर्णन के प्रसंग में लिखा है कि- "क्योंकि किसी प्राचीन विधान में "**अयन्त इध्म...**" से पहली समिधा देने का विधान नहीं है।" यदि किसी प्राचीन विधान में पहली समिधा देने का विधान नहीं है तो दूसरी और तीसरी समिधा इस मन्त्र से देने का विधान है? संस्कार विधि में हिरण्यकेशि सम्प्रदाय के प्रमाण पाये जाते हैं।

हिरण्यकेशि गृह्य-सूत्र में इस मन्त्र "**अयन्त इध्म...**" का विनियोग समिधा देने के अर्थ में किया गया है। देखिये "**इध्मम् अङ्क्त्वा अभ्यादधाति**" तथा पूरा मन्त्र- "**अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहेति।**" पाठक यह न समझ लें कि मैं अपनी ओर से यह मन्त्र लिख रहा हूं। उस स्थल में इसी प्रकार से सूत्र का निर्देश किया गया है। इस सूत्र में "**इध्मम्**" यह एकवचन कर्मकारक का रूप है। एक ही समिधा तथा प्रथम समिधा का ही यहाँ विनियोग है। यहां प्रसंगतः दूसरी और तीसरी समिधा का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता है। "**इध्ममङ्क्त्वा अभ्यादधाति**" यह निर्देश स्पष्ट है कि समिधा को घी में डुबोकर अग्नि में देता है अथवा उसका आधान करता है। इतना ही नहीं आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी "**अयन्त इध्म...**" मन्त्र से समिदाधान का विधान किया गया है। "**इध्ममभि धार्यायन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व**

**वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहेति।''** इस स्थल में वृत्तिकार लिखता है- **''इध्ममभिधार्य अयन्त इति मन्त्रेणाग्नावा दध्यात्''** समिधा को घी में डुबोकर **''अयन्त...''** इस मन्त्र से उसको अग्नि में देवे। यहाँ भी दूसरी या तीसरी समिधा का कोई प्रसंग नहीं है । ऐसी स्थिति में यह कहना कि इस मन्त्र से समिधा अथवा प्रथम समिधा चढ़ाने का विनियोग नहीं है। यह अभियोग निराधार है। इन दोनों गृह्य-ग्रन्थों के प्रबल प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इस मन्त्र से समिधा देने का एक परम्परा से प्रवाह है जो अबाध गति से अब तक चला आता है। जब श्रौत और गृह्य-ग्रन्थों में इध्म शब्द का प्रयोग शतशः समिधा के अर्थ में पाया जाता है तो **''समित् शब्द वाला मन्त्र''** ही चाहिये यह कहना न्याय संगत नहीं है ।

**भौंडा वाक्य-** आपने जिस रूप में भौंड़ा वाक्य बनाया है, उस रूप में वह नहीं है। सामान्य प्रकरण के उस स्थल को पाठकवृन्द स्वयं पढ़ें और ध्यान से देखें तो वहाँ इस रूप में उनको लेख मिलेगा- 'इससे और इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा की आहुति देवे।' इस स्पष्टार्थक निर्देश को भौंडा सिद्ध कर, उसको साहित्य की तुला पर तौलने का प्रयास करना चिन्तनीय है। यदि आपने 'मंगल कार्य' के निर्देश को अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थलों को सुधारने का प्रयास किया होता तो कितना कल्याण आर्यजगत् का होता, नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह तो अभियोग मात्र ही है।

**शतपथ-** चतुर्थ हेतु में आपने शतपथ का प्रमाण कहकर यह सिद्ध किया है कि तीन मन्त्रों से समिधा देनी चाहिए। इस स्थल पर आपने ''प्रत्यृचम्'' शब्द पर विशेष संकेत किया है। ''प्रत्यृचम्'' शब्द पर आश्वलायन गृह्य-सूत्र के वृत्तिकार ने लिखा है कि **''प्रत्यृचम् ग्रहणं ऋगन्ते होमः स्यात्, न स्वाहाकारान्ते।''** अर्थात् जहाँ-जहाँ 'प्रत्यृचम्' का निर्देश किया जाए वहाँ-वहाँ स्वाहा शब्द का उच्चारण किये बिना ही होम होना चाहिए। अर्थात् ऋचा के अन्त में होम कर दे। यदि केवल शतपथ आदि के विनियोग के आधार से ही गृह्य-कार्य किये जायें तो बिना स्वाहा कहे ही होम करना पड़ेगा। हिरण्यकेशि गृह्य-सूत्र और गोभिल गृह्य-सूत्रों में ऐसा लेख है कि **''मन्त्रान्ते स्वाहाकारः। मन्त्रान्ते नित्यः स्वाहाकारः।''** फलतः गृह्य-ग्रन्थों का आश्रय अनिवार्य है।

**अभ्यास-**

**''उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम्''** इस मीमांसा सूत्र से किसी विशेष मन्त्र आदि का अनेक बार का प्रयोग ग्रन्थों के तात्पर्य का निर्णायक होता है। सात बार मैंने संस्कार-विधि के विभिन्न प्रकरणों में **''अयन्त इध्म''** इस मन्त्र की आवृत्ति देखी है। उन-उन स्थलों में यही लिखा है कि- **''अयन्त इध्म आत्मा...''** आदि चार मन्त्रों से समिदाधान करे अथवा **''अयन्त इध्म...''** आदि मन्त्रों से समिदाधान करे। आश्चर्य की बात यह है कि **''समिधाग्निं दुवस्यत...''** इससे प्रथम समिधा देने की चर्चा सारी संस्कार विधि में कहीं नहीं देखी गई। अतएव सम्पूर्ण ग्रन्थ का तात्पर्य भी **'अयन्त इध्म...'** इसी मन्त्र से प्रथम समिधा देने का प्रतीत होता है। जब चार मन्त्रों को पढ़कर तीन समिधा देने का प्रमाण मिलता है, तो केवल स्वामीजी का ही ऐसा लेख नहीं है, किन्तु अबाध गति से यह एक परम्परा चली आ रही। अतः हाशिये पर का लेख प्रक्षेप नहीं, किन्तु संशोधन है। अन्यत्र प्रमाण नहीं मिलने पर सन्देह का अवकाश अवश्य था, किन्तु अब ऐसा नहीं कहा जा सकता । कहीं ऐसा न हो कि भूल के संशोधन के प्रसंग से मूल का ही संशोधन हो जाए।

जब ५० वर्ष पूर्व से इस आन्दोलन का सूत्रधार उपाध्यायजी स्वयं अपने को मानते हैं, तो आर्यसमाज पत्र के इस लेख का कुछ अर्थ नहीं है कि उपाध्यायजी को दो दलों में से किसी एक दल में नहीं रखा जा सकता।

**- समाप्त**

# ज्ञानसूक्त - ०५

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

**प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।**

**-सम्पादक**

**बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।**
**यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।।**

हम इस वेद मन्त्रों की चर्चा में ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ७वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। इस सूक्त को ज्ञानसूक्त कहते हैं। अर्थात् वेद में ज्ञान का महत्त्व, ज्ञान का प्रकार, ज्ञान का स्वरूप, उसके बारे में इसमें चर्चा की गयी है। इस सूक्त में ११ मन्त्र हैं और इन मन्त्रों का ऋषि बृहस्पति है और इन मन्त्रों का देवता ज्ञान है। हमने पहले मन्त्र की चर्चा देखी थी, उसमें कुछ शब्दों पर विचार किया था। इस मन्त्र में जो महत्त्वपूर्ण बात है, वो यह है कि ज्ञान किसके पास है और उसने वो ज्ञान दूसरों को दिया कैसे। ज्ञान का जो अधिपति है, उसे यहाँ बृहस्पति कहा गया है और जिसको ज्ञान देना है वो मनुष्य है। तो परमेश्वर से ज्ञान मनुष्य की ओर कैसे आता है या मनुष्य परमेश्वर से ज्ञान को कैसे प्राप्त करता है? इस बात को इस मन्त्र में समझाया गया है।

हमने पीछे देखा है, वेद हमारा मार्गदर्शक है, हमारे जीवन का पथ प्रदर्शक है। हमें याद होगा कि वेद हमारे लिए चक्षु है- **वेदश्चक्षुः सनातनम्।** अर्थात् आदि काल से हमें कुछ जानना, देखना होता है तो उसके लिए वेद हमारा परम सहायक है। तो इस तरह वेद के अध्ययन से यदि हमारे जीवन का लाभ न हो तो फिर वेद का वेद होना ही निरर्थक हो जाए, क्योंकि संसार के ज्ञान के लिए, संसार के उपयोग के लिए, हमारे ऋषियों ने वेद को अनिवार्य बताया है और आप जानते हैं वेद शब्द का अर्थ स्वयं में इतना व्यापक है और व्यापक होने का सबसे बड़ा आधार और कारण- इन मन्त्रों में जो भाव है, उन भावों को सिद्ध करना, इन मन्त्रों का प्रयोजन है। आप जानते हैं, वेद शब्द का अर्थ ज्ञान भी है, वेद शब्द का अर्थ विचार भी है, वेद शब्द का अर्थ लाभ भी है और वेद शब्द का अर्थ होना अर्थात् सत्ता भी है। सत्ता, लाभ, ज्ञान, विचार यह चारों प्रयोजन वेद से सिद्ध होने चाहिएँ, क्योंकि इसकी संज्ञा वेद है। यह संज्ञा इन चार अर्थों को देती है। वेद से यह चारों ही अर्थ हमको प्राप्त होने चाहिएँ। यह बात इस मन्त्र में हमें स्पष्ट दिखाई देती है।

यह मूल ज्ञान है किसके पास? आवश्यकता किसको है? उसके पास तक वो ज्ञान आता कैसे है? हमने पीछे देखा, मन्त्र का शब्दार्थ था- जिस बृहस्पति परमेश्वर ने हमको जो ज्ञान दिया, जो वाणी के रूप में प्रकाशित हुआ, प्रकट हुआ। और वह ज्ञान संसार की प्रत्येक वस्तु के लिए था, प्रत्येक बात के लिए था, जो वस्तु-बात हमारे लिए काम की है। उस ज्ञान की जो दूसरी विशेषता है, दूसरी कसौटी है, वो है **श्रेष्ठम्**। दुनिया में ज्ञान बहुत है। ज्ञान तो ज्ञान है। आप किसी बुराई के बारे में भी जान सकते हैं, किसी अच्छाई के बारे में भी जान सकते हैं, विभिन्न वस्तुओं को जान सकते हैं। लेकिन, जो सबसे श्रेष्ठ ज्ञान है, वह यह है। सामान्य रूप से ज्ञान जो शब्द है वही श्रेष्ठता का, उच्चता का बताने वाला है। लेकिन यहाँ ज्ञान के साथ श्रेष्ठता का विशेषण और डाल दिया है। अर्थात् दूसरे ज्ञान से वेद के ज्ञान का अन्तर क्या है?

मन्त्र कहता है यह उत्तम ज्ञान है, श्रेष्ठ ज्ञान है, सबसे अच्छा ज्ञान है। कोई ज्ञान अच्छा कब हो सकता है? जब इसमें पूर्णता हो। हमें जिस चीज की आवश्यकता है, वो प्रयोजन यदि सिद्ध हो सकता है तो वो ज्ञान हमारे लिए पूर्ण है। हमारे कार्य को पूर्ण करने के कारण से पूर्ण है। कई बार लोग प्रश्न करते हैं, क्या वेद में सब ज्ञान है? अब सब ज्ञान से क्या? सब ज्ञान से तो संसार में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ परमेश्वर ने किया है, वो सारा ज्ञान है। लेकिन वेद किसके लिए मिला है? किसके लिए दिया गया है, तो वह मनुष्य के लिए दिया गया है। तो इसको यह कहने की बजाए कि ईश्वर ने अपना पूर्ण ज्ञान दिया है, हमारे लिए यह कहना शायद अधिक उचित है कि हमको जितना भी ज्ञान इस संसार के लिए उपयोगी है, चाहिए, वो सब वेद में प्राप्त है, उपलब्ध है।

तो इस दृष्टि से जहाँ मनु यह कहते हैं- **वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।** वहाँ ऋषि दयानन्द भी यह कहते हैं, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वे कहते हैं, जो आदि है, समस्त पदार्थ विद्या है वो सब ईश्वर से आयी है। वेद और ईश्वर का सम्बन्ध है। इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि हमें लगता है जैसे हमारा ज्ञान घटता बढ़ता रहता है, इसलिए ऐसा होता नहीं कि हर समय हर बात हरेक के पास होती है, तो ऐसा ही वेद में भी होगा। कुछ ज्ञान होगा, कुछ नहीं होगा, कुछ बाद में आ सकता है। तो इसके उत्तर के रूप में जो बात शास्त्र कहते हैं, ऋषि लोग कहते हैं, उसके सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने एक बहुत अच्छी बात कही है कि वेद कैसा ज्ञान है? वो कहते हैं, बड़ी सीधी सी कसौटी है, देख लो कि वो ज्ञान किसका है? अर्थात् यदि वह किसी मनुष्य का ज्ञान है तो वह मनुष्य जैसा होगा, क्योंकि मनुष्य अधूरा भी होता है, अज्ञानी भी होता है, कहीं अज्ञानता भी हो सकती है। क्या वेद का ज्ञान ऐसा है? इसके लिए ऋषि दयानन्द जो तर्क देते हैं, कि जिसका ज्ञान है, उस जैसा होगा। अर्थात् यदि ज्ञान देने वाला अधूरा है, अज्ञानी है तो उसका ज्ञान वैसा ही होगा। क्योंकि परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब कुछ जानने वाला है, तो उसका ज्ञान भी सम्पूर्ण होगा।

इसमें एक रोचक तथ्य है, हमें लगता है कि परमेश्वर ने जो ज्ञान दिया है, कुछ नया होगा, इस सृष्टि में जैसा दिया है उससे कुछ अलग देगा। यह कल्पना हमारी, हमको ध्यान में रखकर है। मैं नहीं रहूँगा, मेरा ज्ञान भी नहीं रहेगा। मैं आगे फिर आ जाऊँगा, तो मेरा ज्ञान भी आ जाएगा। आज जितना है, उससे अधिक मिलने पर अधिक आ जाएगा। यह हमारे साथ है। लेकिन परमेश्वर के साथ यह सभी शर्तें नहीं घटतीं। न तो वह कभी अनुपस्थित होता है, न वह कहीं आता जाता है, न वह मरता-जीता है। वो नित्य है, पूर्ण है और सदा रहता है, वह नित्य है तो उसका ज्ञान भी नित्य होगा, वो पूर्ण है इसलिए उसका ज्ञान भी पूर्ण होगा। इसलिए परमेश्वर चाहे हमें ज्ञान आज दे, अगले जन्म में दे, वह सदा हर बार एक जैसा ही रहता है। इसके लिए हम सन्ध्या मन्त्रों में कहते हैं **'यथापूर्वमकल्पयत्'**। उस परमेश्वर ने यह जो सृष्टि की रचना की है, इसमें कुछ भी नया नहीं किया। हमें लगता है कि नया नहीं किया तो क्या लाभ हुआ? हमारा आकर्षण तो नए के लिए है। लेकिन हम एक बात भूल जाते हैं- नया वहाँ होता है जहाँ पहले न्यूनता थी, जहाँ कमी थी, जहाँ अभाव था। जब पहले ही कोई अभाव नहीं है कोई न्यूनता, कोई कमी नहीं है तो वह हजार बार करे चाहे एक बार करे, वो तो वैसा ही होगा जैसा पूर्ण होता है। तो इसलिए वेद के ज्ञान में कोई परिवर्तन की बात करना, नए पन की बात करना इसलिए सम्भव नहीं है, इसलिए उचित नहीं है, क्योंकि वह एक पूर्ण का ज्ञान है, एक नित्य का ज्ञान है, शाश्वत का ज्ञान है। जैसा वो आज है, कल था वैसा ही परसों रहेगा। इसलिए हमारी जो मूल समस्यायें हैं वेद को लेकर कि वह ज्ञान कैसा होगा- तो मन्त्र ने कहा **श्रेष्ठम्।** अर्थात् हमें कितने भी ज्ञान किसी के द्वारा भी मिलते हैं, उनमें कुछ अच्छाई होती है। लेकिन वेद का जो ज्ञान है, वह सबसे अच्छा है, सबसे उत्तम है। इसकी उत्तमता है,

इसकी पूर्णता है, इसकी समग्रता है।

तो इस दृष्टि से मन्त्र में जो शब्द कहा है '**यदेषां**' अर्थात् जिस-जिस को वह ज्ञान दिया गया है, जिसके द्वारा हमें वह ज्ञान दिया जा रहा है- **यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्** कहा कि उसमें कोई पाप, कोई गलती, कोई गलत निर्देश, कोई अनुचित बात नहीं है। यदि कोई अनुचित बात होती तो फिर वह वेद ही नहीं होता। जिसमें कोई गलत बात होगी तो वह वेद नहीं कहलायेगा, क्योंकि वेद सार्वजनीन, सार्वकालिक है। अर्थात् सबके लिए सदा के लिए, सब स्थानों के लिए है, सब परिस्थितियों के लिए है। उसमें यदि गलती या त्रुटि होगी तो फिर वह आपके काम कैसे आ सकता है? इसलिए वह ज्ञान '**अरिप्रमासीत्**' त्रुटि रहित है। उसमें कोई अधूरापन नहीं है। अर्थात् जो ज्ञान दिया गया, वो पूरा है। यदि उसमें अधूरापन होता तो देने का लाभ ही नहीं होता।

वह ज्ञान कैसे दिया गया? सामान्य रूप से हम यह सोचते हैं कि एक मनुष्य बोलता है, दूसरा सुनता है। लेकिन यहाँ उसका उत्तर दिया 'प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि:।' जो गुहा है, गुहा हमारे यहाँ हृदय के लिए आता है, जहाँ पर हमारा जीवात्मा विद्यमान है। जहाँ जीवात्मा और परमात्मा दोनों की सत्ता एक साथ है, उसको हृदय कहते हैं, उसे पुण्डरीक कहते हैं, उसे गुहा कहते हैं। तो कहा कि **यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्, प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि:**। तो दिया कैसे? ऐसा नहीं है कि कानों से हमने सुनकर और आँखों से हमने देखकर ज्ञान को हमने हृदय में पहुँचाया हो। कहा प्रेणा, प्रेरणा से। तो प्रेरणा जो होती है वह हृदय के अन्दर से होती है। तो ये जो प्रेरणा है वो परमेश्वर की होती है, क्योंकि प्रेरक दूसरा होता है, जिसे प्रेरणा दी जाती है वो दूसरा होता है। तो यहाँ वेद का जो मन्त्र है, उसका जो यह शब्द है, वो एक विशेष बात की ओर इंगित कर रहा है, कि यह जो ज्ञान है, यह हमें मिला है अर्थात् हमारे पास था नहीं। मतलब किसी ने दिया है। किसी ने दिया है तो उसका तरीका क्या होगा? तो कहा, प्रेणा, प्रेरणा से। अर्थात् वो हमारी आत्मा में प्रेरणा करके ज्ञान देता है।

इस बात को समझने में थोड़ी सी कठिनाई होती है। प्रेरणा से कैसे देगा? ऋषि दयानन्द इसका उत्तर देते हैं और जब आप मन में विचार करते हैं तो विचार आपके, बाहर से अन्दर जाते हुए नहीं होते, वो विचार अन्दर से बाहर की ओर आते हुए होते हैं। तो जब कोई चीज अन्दर से बाहर आ रही हो या दूसरे से मेरे अन्दर आ रही हो। तो दूसरे से आने के दो प्रकार हैं। यदि कोई दूसरा मेरे जैसा व्यक्ति है, तब वह मुझे कुछ कहेगा। मैं सुनूँगा, मैं देखूँगा, मैं पूछूँगा, मुझे मिलेगा। लेकिन वह बृहस्पति मेरे जैसा नहीं है, वह ईश्वर है, तो उसके पास शरीर नहीं है और वह मुझ शरीर वाले को ज्ञान देना चाहता है। तो यहाँ कहा है **प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि:**, क्योंकि वह स्वयं आत्मा के अन्दर विद्यमान है इसलिए हम उसे कहते हैं अन्तरात्मा। जो हमारी आत्मा के भी अन्दर रहता है। उसे अन्तर्यामी, ऐसे शब्दों से हम पुकारते हैं। तो वह गति करता है, कराता है- बाहर से नहीं अन्दर रह कर कराता है। अन्तर्याम्यमृत: अन्दर से गति करने वाला है। तो यहाँ पर जो ज्ञान की गति है, प्रेरणा है वो हमारे अन्दर हमारी गुहा में स्वयं विद्यमान है, विराजमान है, बैठा हुआ है। उसके पास अवयव नहीं है और मेरे अंगों का, अवयवों का उपयोग मैं नहीं कर रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति में उसका और मेरा जो संवाद है वो कैसे हो रहा है? तो उसका तरीका है प्रेरणा। वह प्रेरणा कर रहा है और उस प्रेरणा से वह ज्ञान मुझे प्राप्त हो रहा है। तो वह जो ज्ञान देने का प्रकार है- तो दो प्रश्न थे, निराकार कैसे देगा? (साकार द्वारा साकार को देना समझ में आता है) निराकार साकार को यदि ज्ञान दे। हमने समझा है वह तो साकार में जिसको ज्ञान दे रहा है वह निराकार को ही दे रहा है। इसलिए देने वाला भी निराकार है और लेने वाला भी निराकार है। इसलिए उनमें जो लेने और देने का तरीका है वो प्रेरणा हो सकती है।

इसलिए वेद कहता है- **प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि:**। अर्थात् यह ज्ञान के आदान-प्रदान का प्रकार. है। **क्रमश:...**

# ऋषिराज के प्रेरक वचन : सोचें और स्वीकारें

आचार्य रामनिवास 'गुणग्राहक'

कोई भी अच्छा लेखक और वक्ता केवल लिखने के लिए नहीं लिखता और केवल बोलने के लिए ही नहीं बोलता। लेखनी और वाणी के माध्यम से वह अपने मन-मस्तिष्क के उन विचारों को, हृदय की उन भावनाओं व अनुभूतियों को पाठकों व श्रोताओं के लिए प्रकाशित-प्रचारित करता है, जिन्हें कि वह उनके लिए सुखद व हितकारक मानता है। अपनी बातों की विश्वसनीयता के लिए वह अपने से पूर्ववर्ती विद्वानों, ऋषियों-मुनियों के वचनों को साथ मिलाकर इसलिए प्रस्तुत करता है, ताकि पाठकों-श्रोताओं का हृदय स्वीकार कर ले कि सच में यह हमारे लिए कल्याणकारी है।

लेखक-वक्ता का अनकहा कर्त्तव्य यह है कि जिसे वह पाठकों-श्रोताओं के लिए सुखद व हितकारी मानकर लिख या बोल रहा है, उसे अपने लिए भी सुखद व हितकारी मानकर अपने जीवन का अंग बनाये। जो लेखक और वक्ता कथनी को करनी नहीं बना पाते, सच में या तो वे विद्या-व्यापारी हैं या पाखण्डी। सौभाग्य से हम आर्यों को अपने मार्गदर्शक के रूप में ऐसा महामानव मिला है, जिसका व्यवहार उसके द्वारा लिखे व बोले गये उपदेशों का सजीव प्रमाण था। सम्भवत: महर्षि दयानन्द का अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश विश्व-इतिहास का पहला ग्रन्थ है, जिसके प्रारम्भ में लेखक ने-"**ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि**" लिखकर ऋत और सत्य बोलने-लिखने का संकल्प प्रकट किया है तथा ग्रन्थ पूर्ति पर भी-'**ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्**' लिखकर पाठकों को आश्वस्त किया है कि इस ग्रन्थ में मैंने जो भी कहा है, वह ऋत ही कहा है, सत्य ही कहा है। ऐसे सत्य वक्ता और सत्याचार से समृद्ध महामानव के पथानुगामी होकर भी हम आर्य कहलाने वाले उनके वचनों पर पूरी श्रद्धा रखते हुए विश्वास न करें, तो यह हमारा आलस्य ही होगा।

ऋषिवर एक घोषणा और करते हैं-"मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्त्तता है, उसको सर्वत्र सुख लाभ और जो विपरीत वर्त्तता है, वह सदा दु:खी होकर अपनी हानि कर लेता है।" सत्य धर्म के प्रति ललक और लगन जगने के लिए इस ऋषि-वचन से बढ़कर साहित्य-सागर में हमें तो कुछ मिला नहीं, किसी को मिले तो बताएँ। ऋषि लिखते हैं कि मैंने परीक्षा करके निश्चिय किया है। आर्यो! जिन्हें महर्षि के 'परीक्षापूर्वक निश्चय' पर भी विश्वास नहीं, उनके प्रति शोक प्रकट करने के अतिरिक्त कोई सज्जन भला क्या कर सकता है? ऋषि लिखते हैं- 'विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे (श्रोता व पाठक) स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।' स्पष्ट है कि वक्ता व लेखक का काम सत्यासत्य के स्वरूप को प्रकट करना है, इसके बाद सत्य को स्वीकार करना और असत्य को छोड़ने का आनन्ददायक काम श्रोताओं वा पाठकों का है। अगर वक्ता-लेखक सत्य-असत्य के प्रकट करने में छल-कपट करता है, तो वह घोर पाप कर रहा है। दूसरी ओर श्रोता व पाठक सत्य के ग्रहण और असत्य के छोड़ने में आलस्य-प्रमाद करता है तो यह उसका दोष है। सुसंस्कारी हैं वे पुरुष, जो सत्य के ग्रहण करने के लिए सदा मन-मस्तिष्क और हृदय के कपाट खुले रखते हैं। इसके लिए विद्वान् होना ही पर्याप्त नहीं है। ऋषिवर के जीवन से परिचित लोग जानते हैं कि काशी शास्त्रार्थ के समय देशभर के चुने हुए विद्वान् शास्त्रज्ञ और धर्माचार्य ऋषि के सामने उपस्थित थे।

बड़ा सीधा प्रश्न था- 'क्या वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है?' आश्चर्य ही कहा जाएगा कि न तो कोई वेदों में मूर्तिपूजा का विधान दिखा सका और न ये खुले हृदय से स्वीकार कर सका कि वेदों में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। दूसरी ओर देखें तो झेलम में महर्षि के प्रेरक प्रवचन सुनकर दोषों, दुर्गुणों व दुर्व्यसनों की दलदल में आकण्ठ डूबा अमीचन्द सत्य को ग्रहण करने की अपनी अन्तःशक्ति के बल पर भक्त अमीचन्द बनकर अपना नर-तन सफल कर गया। सोचो, विचार करो कि हम कहाँ खड़े हैं?

ऋषिवर ने आर्यों से कहा था- ''हाँ इतना अवश्य चाहिए कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्ड मत का खण्डन करना अवश्य सीख लें, जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके।'' क्या हम ऐसा कर पाये? आज हम आर्य कहलाने वालों में कितने ऐसे योग्य हैं जो वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्ड मत का सतर्क-सप्रमाण खण्डन कर सकें? महर्षि ने वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहकर वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म कहा। क्या हम आर्य कहलाने वाले अपने इस 'परम-धर्म' का पालन करते हैं? क्या हमने कभी अपने हृदय से पूछा कि महर्षि ने संध्योपासना व यज्ञ आदि कर्मों का विधान किन के लिए किया था? भला बताओ तो कि आर्यसमाज के दस नियम किनके लिए लिखे थे? सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सर्वदा उद्यत रहने वाले आर्य कहाँ मिलते हैं?

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने की शिक्षा महर्षि ने किन के लिए दी थी?

संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना किस समाज का मुख्य उद्देश्य है? जो कहो कि आर्यसमाज का तो हृदय पर हाथ रखकर बताओ कि क्या हमने अपनी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कर ली? यदि नहीं, तो जो अपना भला न कर सका, वह दूसरों का कैसे कर सकता है? सच यह है कि हम भला करना जानते ही नहीं।

सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना भी हमने सीख-समझ लिया होता तो हमारे संगठन की स्थिति रेगिस्तान के बालू रेत जैसी न होती। हमारी प्रान्तीय सभाएँ दलबन्दी का शिकार होकर दलाल किस्म के लोगों की अंगुलियों पर नहीं नाचतीं।

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करने की दिशा में हम थोड़ा-सा भी प्रयास करते तो सब प्रकार के क्लेशों की जननी अविद्या यूँ सर्वत्र ताण्डव करती न फिरती। आर्य परिवार कहे जाने वालों के यहाँ पौराणिक पाखण्ड क्यों कर फूलता-फलता?

सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने और सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहने की भावना को जन्म से पूर्व ही कुचल देने वाले लोग ही जब कर्णधार बन जाएँ, तो लगता है कि महर्षि ने पंच महायज्ञ जैसे धर्मानुष्ठान और सामाजिक सिद्धान्त किसी दूसरे लोक वालों के लिए लिखे थे।

मेरे ऋषि के हृदय में अपनी पीड़ा तो ढूँढने से भी नहीं मिलती, लेकिन देश और जाति के लिए उनकी पीड़ा हृदय से छलकती ही रहती थी। पूना प्रवचन में वे कहते हैं-'हमारे बड़े भाई शास्त्री लोग जो परम्परा न छोड़ने के विषय में हठ कर बैठे हैं, यह भी ठीक नहीं है।...इतनी परम्परा को पकड़ रखने से धर्म प्रबन्ध में बड़ी गड़बड़ मच गई है। इस गड़बड़ को विचारने से कलेजा धड़कने लगता है। देखो! चारों ओर जाति-विभाग होकर हम निर्बल हो गये हैं।' ऋषिवर की पीड़ा देखिये-''आर्यावर्त्त देश पर मुझको बहुत पश्चात्ताप है, क्योंकि इस देश में प्रथम बहुत सुखों और विद्याओं की उन्नति थी। बहुत ऋषि-मुनि, बड़े-बड़े विद्वान् इस देश में भये थे, जिनके अच्छे-अच्छे काम और विद्या पुस्तक अब तक चले आते हैं। अच्छे-अच्छे राज-धर्म चलाने वाले राजा भी हुए, जिन्होंने कभी पक्षपात का कोई काम नहीं किया,

किन्तु सदा धर्म-न्याय में ही प्रवृत्त भये। सो (आर्यावर्त्त) इस वक्त ऐसा बिगड़ा है कि इतना बिगाड़ किसी देश में देखने में नहीं आता।'' अन्यत्र ऋषि लिखते हैं- ''यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा...शरीर, औषधि, वनस्पति, खाना-पीना आदि व्यवहार ज्यों के त्यों बने हैं, मगर आर्यों का हाल क्यों बदल गया?'' आर्यो! अगर हम सच में देव दयानन्द के सच्चे अनुयायी हैं, अगर सच्चे आर्य हैं, तो महर्षि के इन वचनों से प्रवाहित हो रही उनकी देश, धर्म व आर्य जाति के लिए पीड़ा को हृदय के कानों से सुनें, स्वीकार करें!

हाय! किसी ने कब सोचा था कि ऋषिवर पुराणपन्थी अवैदिक विद्वानों के लिए जो मर्मभेदी वचन लिख गये हैं, वे पूर्णत: हम वैदिक विद्वान् कहलाने वालों पर भी अक्षरश: चरितार्थ होंगे? 'यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् सब मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़कर सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें-वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।' क्या हमारे सब आर्य विद्वान् इधर ध्यान देंगे? आज सार्वदेशिक से लेकर सभी प्रान्तीय सभाओं में जो दलबन्दी और पदलोलुपता की आत्मघाती दुष्प्रवृत्ति ताण्डव कर रही है, क्या हम व हमारे विद्वान् इस विकराल स्थिति में भी स्वर्ग-नर्क के प्रवचनों में नहीं खो रहे? क्या कभी हमने निष्पक्ष होकर आर्यसमाज के आंगन में फूल-फल रही इस विषबेल को उखाड़ने के लिए सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो सबके पास सत्य है, उसे सब ग्रहण करें और जो एक दूसरे के विरुद्ध लोकैषणा का झूठा पर्दा सबने डाल रखा है, उसे त्याग कर परस्पर प्रीति से सब जगत् का पूर्ण हित करने की दिशा में कोई ठोस और सार्थक कदम बढ़ाने का साहस प्रकट किया है? आर्यो ऋषि लिखते हैं- ''जो मत-मतान्तर के परस्पर झगड़े हैं, उनको मैं प्रसन्न (पसन्द) नहीं करता।'' इधर हम हैं कि अपने घर में ही झगड़े, वैर-विरोध इतने बढ़ाते जा रहे हैं। कि प्रतिनिधि सभाओं के चुनावों में फूट और परस्पर द्वेष की आग जिले और गाँवों की आर्यसमाजों तक सुलगा दी गई है, मगर किसी का हृदय नहीं डोला! हे दयालु देव! क्या दयानन्द का तप-बलिदान इसी के लिए था?

आर्यो! ऋषि ने लिखा है- 'सर्वसत्य का प्रचार कर सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराके सबसे सबको सुख-लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।' कभी सोचकर तो देखो कि ऋषिवर के भक्त व अनुयायी कहलाने वाले हम आर्यों का प्रयत्न और अभिप्राय क्या है? क्या सर्वसत्य का प्रचार? सबको ऐक्यमत में कराना? परस्पर द्वेष छुड़ाकर दृढ़ प्रीति युक्त करना? सबसे सबको सुख-लाभ पहुँचाना? या और कुछ? अरे! हमने विचार करना भी क्यों छोड़ दिया? 'मननात् मनुष्य:' को त्याग कर हम मनुष्य कहलाने के योग्य भी रहे हैं क्या? ऋषिवर ने क्या-क्या स्वप्न देखे थे, हमसे कैसी आशाएँ लगा रखी थीं? पूना प्रवचन में उन्होंने कहा था- ''ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि सर्वत्र आर्यसमाज कायम होकर मूर्तिपूजा आदि दुराचार दूर हो जावे, वेद शास्त्रों का सच्चा अर्थ सबकी समझ में आवे और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण होकर देश की उन्नति हो जावे।'' और देखिये- 'गांव-गांव में आर्यसमाज-स्थापना करके तथा मूर्तिपूजादि अनाचारों को दूर करके एवं ब्रह्मचर्य से तप का सामर्थ्य बढ़ाकर सब वर्णों व आश्रमों के लोगों को चाहिए कि शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ावें तो सुगमता से लोगों की आँखें खुल जावेंगी और दुर्दशा दूर होकर सुदशा प्राप्त होगी।'

महर्षि की इन आशाओं, उनके सुखद सपनों का आज क्या हुआ? न तो गाँव-गाँव में आर्यसमाज स्थापित हुए, न मूर्तिपूजादि दुराचार-अनाचार दूर हुए। अब तो ये मूर्ति पूजा जिसे ऋषि ने दुराचार व अनाचार तक कहा है,

वह आज आर्यसमाज के कर्णधार कहे जाने वालों के घर में धड़ल्ले से हो रही है। ब्रह्मचर्य के अभाव में आर्यों में तप का सामर्थ्य दिखता ही नहीं, ऐसे में शारीरिक व आत्मबल की बात कौन करे? जब तक आर्यों में इन सद्गुणों का विकास नहीं होगा, तब तक देश की दुर्दशा दूर होकर सुदशा की, उन्नति की प्राप्ति कैसे होगी? कौन विचारेगा इन बातों को? यह सब सुधी आर्यों को अवश्य सोचना चाहिए।

अन्त में ऋषिवर के कुछ ऐसे ही प्रेरक वचन देकर लेखक देखना चाहता है कि आर्यों के हृदय में प्रेरणा स्वीकारने की कितनी सामर्थ्य बची है। ऋषि ने लिखा है- ''मैं जैसा सत्य धर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने से प्रसन्न होता हूँ, वैसा किसी अन्य बात पर नहीं।'' और देखें- ''हम आर्य लोग वेदोक्त धर्म के विषय में प्रीतिपूर्वक, पक्षपात छोड़कर विचार करें तो सब प्रकार से कल्याण ही है, यही मैं चाहता हूँ।'' आज के वातावरण में ऋषिवर की प्रभु से की गई प्रार्थना के साथ लेखनी को विराम देंगे। ऋषि का संकल्प- ''मैं सिवाय वेदोक्त सनातन आर्यावर्त्तीय धर्म के अन्य सोसायटी, समाज व सभा के नियमों को न स्वीकार करता था न करता हूँ, न करुँगा, क्योंकि यह बात मेरे आत्मा की दृढ़तर है, शरीर-प्राण भी जाएँ तो भी इस धर्म से विरुद्ध कभी नहीं हो सकता।'' प्रार्थना भी देखें- ''सर्वशक्तिमान परमात्मा एकमत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के (आर्यों के) आत्माओं में प्रकाशित करे।''

**''दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्ना आसुव।''**

## सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

## बैंक विवरण

**खाताधारक का नाम**

**परोपकारिणी सभा, अजमेर**

**(PAROPKARINI SABHA AJMER)**

**बैंक का नाम**

**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

**10158172715**

**IFSC - SBIN0031588**

**UPI ID : PROPKARNI@SBI**

# वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

# असंख्यात पवित्र कर्मों का निमित्त 'यज्ञिय-व्यवहार'

[ –प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर ( यूजीसी ), महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर ( राजस्थान ) ]

[ ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–सविता, छन्दः–भुरिग्जगती ( ४८+१ ), स्वरः–निषादः ]

विषयः– स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते॥

(पूर्व मन्त्र में व्याख्यात 'यज्ञिय-व्यवहार' किस प्रकार उपकारक है, इसका उपदेश इस मन्त्र में किया गया है।)

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्[१]। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा[२] कामधुक्षः[३]॥

–यजु० १.३॥

[अनु०-०, नि०-११, उ०-१२, स्व०-१३, प्र०-१३ = ४९ अक्ष०, क०मं०-३, पा०-३]

पदपाठः– वसोः। पवित्रम्। असि। शतधारमिति शतऽधारम्। वसोः। पवित्रम्। असि। सहस्रधारमिति सहस्रऽधारम्॥[१] देवः। त्वा। सविता। पुनातु। वसोः। पवित्रेण। शतधारेणेति शतऽधारेण। सुप्वेति सुऽप्वा।[२] कामिति काम्। अधुक्षः[३]॥ ३॥

[अनु०-१२, नि०-१६, उ०-१९, स्व०-१७, प्र०-७ = ७१ अक्ष०, अव०प०-४, ग०प०-६, स०प०-१८]

| मन्त्र-पद | संस्कृत-पदार्थ ( म० द० स० ) | दयानन्दभाष्य-बोधामृत |
|---|---|---|
| वसोः | वसुर्यज्ञः॥ | हे यज्ञिय व्यवहार में कुशल मनुष्य! इस यज्ञिय व्यवहार के कारण से |
| शतधारम् | शतं बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तम्॥ शतमिति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१)॥ | आप सैंकड़ों प्राणियों का धारण व पोषण करने में समर्थ |
| पवित्रम् | शुद्धिकारकं कर्म॥ | शुद्धिकारक पवित्र कर्म वाले |
| असि | अस्ति॥ | हो जाते हैं। |
| वसोः | वसुर्यज्ञः॥ | आप इस यज्ञिय व्यवहार के कारण से ही |
| सहस्रधारम् | बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञम्॥ सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१)॥ | हजारों प्राणियों का धारण व पोषण करने में समर्थ |
| पवित्रम् | वृद्धिनिमित्तम्॥ | वृद्धि के निमित्तक पवित्र कर्म वाले |
| असि | अस्ति॥ | हो जाते हैं। |

| मन्त्र-पद | संस्कृत-पदार्थ ( म० द० स० ) | दयानन्दभाष्य-बोधामृत |
|---|---|---|
| देवः | स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः॥ | स्वयं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न विद्वान्-जन, |
| सविता | सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां सविता॥ सविता वै देवानां प्रसविता। (शत०१.१.२.१७)॥ | जो पृथिवी आदि ३३ देवताओं तथा पूर्वोक्त यज्ञिय कर्मों के प्रेरक हैं, वे |
| वसोः | पूर्वोक्तो यज्ञः॥ | आपके यज्ञिय व्यवहार के कारण से ही |
| पवित्रेण | पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा॥ | आपको पवित्रता के निमित्तक वेद के विज्ञान से युक्त करके |
| शतधारेण | बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा॥ | बहुविध विद्याओं के धारण करने में समर्थ बनाकर |
| सुप्वा | सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन॥ | भली प्रकार पवित्र भाव से युक्त करके |
| त्वा | तं यज्ञम्॥ | यज्ञिय व्यवहार में संलग्न हुए आपको |
| पुनातु | पवित्रीकरोतु॥ | पवित्र करते रहें। |
| काम् | कां कां वाचम्॥ | प्रेरक प्रभु तथा उपदेष्टा विद्वानों की प्रेरणा से पवित्र हुए, हे याज्ञिक पुरुष! आप किस-किस प्रकार की वाणी रूप गाय को |
| अधुक्षः | दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः॥ अत्र लडर्थे लुङ्॥ अयं मन्त्रः। (शत०१.५.४.१२-१६) व्याख्यातः॥ ३॥ | दुहना चाहते हो अर्थात् पूर्वोक्त प्रेरक उपदेश पाकर आप किस प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त होना चाहते हो। |

तत्त्वबोध–

१. "वसोः। पवित्रम्। असि।"– इन तीन पदों के समूह का पदपाठ पूर्व मन्त्र (यजु० १.२) में हो चुका है। वाजसनेय-प्रातिशाख्य (४.१६८-१८१) के संक्रम प्रकरण में कथित विधानों के अनुसार संहिता-पाठ के जो पद गलित-संज्ञक हो जाते हैं, उनका पद-पाठ में पुनः ग्रहण नहीं होता है। तीन अथवा तीन से अधिक पदों का समूह जब संहिता-पाठ में एक से अधिक बार आता है तब वह गलित कोटि में आ जाता है और पदपाठ में प्रथम स्थल को छोड़कर शेष स्थलों पर उसका सङ्क्रम हो जाता है अर्थात् पुनः उस पदसमूह का पदपाठ नहीं किया जाता।[१] सामान्य प्रयोजन से पुनरुक्त का परित्याग होता है, परन्तु 'द्रव्य, देवता, अर्थ, लिङ्ग, वचन, स्वर तथा कर्ता के भेद से पुनरुक्त का ग्रहण किया जाता है'।[२] भाष्य में सभी पद आवश्यक होते हैं अतः महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में सभी पदों का पदपाठ पाठकों के समक्ष मन्त्रगत प्रत्येक पद का अर्थ सहज स्पष्ट हो सके, इस प्रयोजन-विशेष से किया है। गार्ग्य एवं काण्व का मत भी

**यही है कि प्रयोजनवश पुनरुक्त पद का लोप नहीं होता।**[3] स्पष्टता के लिए पदपाठ के नीचे दिए गए विवरण में इसका उल्लेख 'ग०प०-६' इस रूप में कर दिया गया है।

**२. शतधारम्, सहस्रधारम्** – शत और सहस्र शब्दों के कृदन्त धार शब्द का समास होने पर ये दोनों पद निष्पन्न होते हैं। मूलतः 'शत' शब्द 'पञ्चविंशति-त्रिंशत्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्'[4] सूत्र से त-प्रत्यान्त निपातित है तथा प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त 'शत' है। इसी प्रकार 'सहस्र' शब्द भी छान्दस बहुलविधि से मध्योदात्त निपातन होकर 'सहस्र' ऐसा निष्पन्न होता है। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः'[5] धातु से रक्-प्रत्यय[6] होकर अन्तोदात्त 'धार' शब्द निष्पन्न होता है। उपपद समास में दोनों पदों में 'कुरुगार्हपत रिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च'[7] सूत्र से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होकर क्रमशः 'शतधारम्, सहस्रधारम्' रूप बन जाते हैं। शत और सहस्र दोनों शब्द यहाँ 'असंख्य' के अर्थ में प्रयुक्त हैं। एक ही बात को दो बार कहना उस पर बल दिए जाने का संकेत है। मनुष्य जब समस्त जड़-चेतन जगत् के प्रति मन-वचन-कर्म से "आदर-सत्कार, अहिंसा तथा सबकी उन्नति में अपनी उन्नति" के उदात्त यज्ञिय भावों से आप्लावित होकर अपना जीवन-यापन कर रहा होता है तो स्वभावतः उन सबका धारक और पोषक बन जाता है। इस प्रवृत्ति की ओर प्रेरित करना ही मन्त्र का निहितार्थ है।

**३. देवः, सविता** – (दिवु क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु[8] + अच् प्रत्ययः[9], चित्वात् अन्तोदात्तः[10] = देवः; षुञ् अभिषवे[11], षूङ् प्राणिप्रसवे[12], षू प्रेरणे[13] + इट्[14] + तृच्[15], चित्वात् अन्तोदात्तः[16] = सविता) – इन दोनों पदों का प्रयोग स्वयं प्रकाश स्वरूप, समस्त जड़-चेतन जगत् के प्रेरक परमेश्वर तथा ईश्वर-प्रदत्त वेद-ज्ञान से प्रकाशित यज्ञिय-व्यवहार सम्पन्न, दूसरों को अपने सदाचरण से प्रेरणा करने वाले विद्वान् दोनों के लिए हुआ है। यज्ञिय-व्यवहार की यात्रा में अग्रसर होने वाले उपासक को दोनों के प्रति प्रार्थनीय भाव से युक्त होकर अपने व्यवहार को निरन्तर उत्कृष्ट बनाए रखने का प्रयास करते रहना चाहिए।

**४. ३३ देवताओं के संबन्ध में** महर्षि दयानन्द 'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं–

---

१. त्रिपदाद्यावर्तमाने सङ्क्रमः॥ –वा० प्रा० ४.१६८॥

२. द्र०– अर्थविशेषात् पुनरुक्तस्य ग्रहणं भवति। अर्थसामान्यात् पुनरुक्तस्यातिक्रमः। तथा चोक्तम्–"द्रव्य-देवतार्थ-लिङ्ग-वचन-स्वर-कर्तृभेदैः पुनरुक्तस्य ग्रहणं भवति"।

–वा० प्रा० ४.१७७ पर उवट का भाष्य॥

३. द्र०– "पुनरुक्तानि लुप्यन्ते पदानीत्याह शाकलः। अलोप इति गार्ग्यस्य काण्वस्यार्थवशादिति"।

–वा० प्रा० ४.१७७ पर उवट द्वारा समुद्धृत॥

४. अष्टा० ५.१.५९॥ दश दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य अस्मिन् अर्थे शत शब्दः निपात्यते। दश + दशत् + त – दशानाम् वर्गः अस्मिन् अर्थे 'पञ्चद्दशतौ वर्गे वा' (अष्टा० ५.१.६०) इत्यनेन दशत्-शब्दः निपात्यते। तस्मात् वर्तमानसूत्रेण त प्रत्ययः निपात्यते। श + त –निपातनात् सम्पूर्णस्य अङ्गस्य शु आदेशः भवति। प्रत्यय-स्वरेण चान्तोदात्तः 'शत'।

५. जुहोत्यादिगण उभयपदी।

६. बहुलमन्यत्रापि संज्ञाछन्दसोः॥ –उणादि० २.२३॥

७. अष्टा० ६.२.४२॥ ८. दिवादिगण परस्मैपदी।

९. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः॥ –अष्टा० ३.१.३४॥

१०. चितः॥ –अष्टा० ६.१.१६३॥

११. स्वादिगण उभयपदी।

१२. दिवादिगण, आत्मनेपदी।

१३. तुदादिगण परस्मैपदी।

१४. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा॥ –अष्टा० ७.२.४४॥

१५. ण्वुल्तृचौ॥ –अष्टा० ३.१.१३३॥

१६. चितः॥ –अष्टा० ६.१.१६३॥

"'त्रयस्त्रिंशता०' [यजुः १४।३१] इत्यादि वेद में प्रमाण है, इसकी व्याख्या शतपथ [कां० १४। प्रपा० ६। ब्रा० ९। कं० ३-७] में की है कि तेतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से आठ 'वसु'। प्राण, अपान, व्यान, [उदान], समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह 'रुद्र' इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह 'आदित्य' इसलिये हैं कि ये सब के आयु को लेते जाते हैं। बिजुली का नाम 'इन्द्र' इस हेतु से है कि जो परम ऐश्वर्य्य का हेतु है। यज्ञ को 'प्रजापति' कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से 'देव' कहाते हैं।" इसी प्रकार 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के 'वेदविषयविचार' प्रकरण में वर्णित तेतीस देवों के संबन्ध में ऋषिवर का वक्तव्य भी पठनीय है।

**५. पुवित्रेण, शतधारेण, सुप्वा** – (सुष्ठुतया पुनातीति सुपूः; सु +पूञ् पवने[१७] + क्विप्[१८] = सुपू, 'गतिकारकोपपदात् कृत्'[१९] सूत्र से उत्तरपद 'पू' को प्रकृतिस्वर प्राप्त होने से 'सुपू' ऐसा अन्तोदात्त प्रातिपदिक बना। सुपू + टा = सुप्वा (सुप्वा), यहाँ 'टा' विभक्ति अनुदात्त है। यण्-सन्धि होने पर 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्'[२०] सूत्र से यण्-स्थानीय अनुदात्त को उदात्तत्व प्राप्त हुआ, जिसका निषेध 'नोङ् धात्वोः'[२१] सूत्र से होकर, 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य'[२२] सूत्र से यण्-स्थानीय अनुदात्त को 'क्षैप्र'[२३] संज्ञक स्वरित हो गया।

ये तीनों पद पवित्रता के साधन की विशेषता को प्रकट करते हैं अथवा कहना चाहिए कि परमेश्वर तथा विद्वान् लोग अपने सान्निध्य मे आए उपासक को पर्युक्त त्रिविध साधनों से युक्त करके उसके यज्ञिय-व्यवहार को सुदृढ़ करते हैं, जिससे वह किसी भी परिस्थिति में विचलित न हो। वे तीन साधन हैं– (१) पवित्रता का निमित्तक वेद-विज्ञान, (२) बहुविध विद्याओं के धारण करने का सामर्थ्य, तथा (३) पवित्र भाव। इन तीनों साधनों से युक्त होने पर उपासक की याज्ञिक-यात्रा निर्विघ्न हो जाती है।

**६. काम्, अधुक्षः** – (किम् + टाप् +अम् = काम्, प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त[२४] ; दुह प्रपूरणे[२५], अट् + दुह् + क्स +लुङ् मध्यम पुरुष एकवचन = अधुक्षः[२६] ; संहिता में सर्वानुदात्त[२७] होकर 'अधुक्षः' ऐसा रूप प्रयुक्त हुआ है।) यहाँ 'काम्' इस प्रश्न के कारण उवट[२८], महीधर[२९] दोनों आचार्यों ने प्रथम मन्त्र में पठित 'अघ्न्या[३०] = गौः' पद के अनुरोध से 'कां गाम्' ऐसा अध्याहार किया है। महर्षि दयानन्द ने भी 'गाम्' पद का ही अध्याहार किया है, परन्तु वे 'गौ' पद का निघण्टु के वाङ्-नाम[३१] में पठित होने से इसका अर्थ 'वाचम्' अर्थात् वेद-वचन करते हैं, जो मन्त्रगत प्रकरण के सर्वथा अनुकूल है।

---

१७. क्र्यादिगण उभयपदी।

१८. क्विप् च॥ –अष्टा० ३.२.७६॥

१९. अष्टा० ६.२.१३९॥ २०. अष्टा० ६.१.१७४॥

२१. अष्टा० ६.१.१७५॥ २२. अष्टा० ८.२.४॥

२३. युवर्णौ यवौ क्षैप्रः॥ –यजु-प्रा० १.११५॥

२४. फिषोऽन्त उदात्तः॥ –फिट्० १.१॥

२५. अदादिगण उभयपदी।

२६. लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः॥ –अष्टा० ६.४.७१॥ से लुङ् लकार में प्रयुक्त अट् आगम उदात्त स्वर वाला।

२७. तिङ्ङतिङः॥ अष्टा० ८.१.२८॥

२८. द्र०– "गवां मध्ये त्वं कां गाम् अधुक्षः" यजु० १.२ पर उवटभाष्य।

२९. द्र०– "विद्यमानानां गवां मध्ये त्वं कां गाम् अधुक्षः दुग्धवानसि" यजु० १.२ पर महीधरभाष्य।

३०. 'अघ्न्या इति गोनामसु पठितम्'। (निघं०२।११)

३१. 'गौरिति वाङ्-नामसु पठितम्'। (निघं०१।११)

विषय में प्रवेश करता है उसके विशेष ज्ञान का प्रकाश उसके समक्ष अति शीघ्र हो जाता है।

**७. पृथिवी॑–** (प्रथ प्रख्याने[१६] + षिवन्[१७] + ङीष्[१८] =पृथिवी॑, ङीष्-प्रत्यय आद्युदात्त[१९] होने से 'पृथिवी॑' शब्द अन्तोदात्त) यज्ञिय व्यवहार करने वाला दूसरों का आदर करने, सहयोग करने तथा सह-अस्तित्व बनाए रखने में सदैव सजग रहता है। उसके व्यवहार में लोभ और हिंसा का कोई स्थान नहीं होता। वेद के शब्दों में वह सभी आत्माओं में स्वयं को देखने लगता है, उसके लिए कोई पराया नहीं रह जाता, वह एकत्व को उपलब्ध हो जाता है। वह अपने-पराये की संकुचित वृत्ति से बाहर आकर समस्त प्राणियों के प्रति ही नहीं अपितु जड़ रूप में दृश्यमान् वृक्षादि के प्रति भी उदारभाव से स्वाभाविक व्यवहार करता है। यह उदारहृदयता ही यज्ञिय-व्यवहार से उदीयमान व्यक्तित्व-विकास का तीसरा उदात्त गुण है, जिसके रहते हुए कोई पराया नहीं रह जाता, फिर उसे न शोक होता है और न मोह। वह इसी संसार में मोक्ष-के-से आनन्द का अनवरत उपभोग करता है।[२०]

**८. पृथिवी॑ + अ॒सि॒ = पृथिव्यसि –** इन दोनों पदों के संहिता-पाठ में 'वी॑' उदात्त की 'अ॒' अनुदात्त के साथ यण्-सन्धि[२१] होकर 'व्य' ऐसा स्वरित-स्वर वाला[२२] बन जाता है। प्रातिशाख्य की भाषा में यह क्षैप्र-स्वरित[२३] है। यजुर्वेद में क्षैप्र आदि स्वतन्त्र-स्वरितों से परे 'उदात्त' स्वर होने पर स्वतन्त्र-स्वरित के नीचे त्रिशूल के आकार वाला न्युब्ज-चिह्न[२४] लगाया जाता है और अन्य सभी दशाओं में ऐसे स्वरित को उसके नीचे अर्ध-समकोण का चिह्न देकर दर्शाया जाता है। यहाँ क्षैप्र-स्वरित 'व्य' के बाद प्रचय-संज्ञक 'सि' पड़ा होने के कारण इसे 'पृथिव्यसि' इस प्रकार अर्ध-समकोण के चिह्न से दर्शाया गया है।

**९. मातरिश्वनः, घर्मः–** 'मातरिश्वनः' शब्द में निपातन से अलुक्-सप्तमी तत्पुरुष समास है, (मातृ + श्वस् + कनिन्[२५] + ङस् = मातरिश्वनः)। प्रायः सभी भाष्यकार 'मातरिश्वा' शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ वायु अथवा प्राण करते हैं। आचार्य मुद्गल इसे ही 'देहाकाश में निरन्तर प्रवहमान 'व्यान' नामक प्रमुख प्राणक्रिया' मानते हैं।[२६] परन्तु सम्पूर्ण प्राणमय कोश ही इसका अर्थ समझना चाहिए, जिसमें पाँच मुख्य प्राण (अपान, समान, प्राण, उदान एवं व्यान) तथा पाँच उपप्राण (देवदत्त, वृकल, कूर्म, नाग, एवं धनञ्जय) दोनों ही समाहित हो जाते हैं। 'घर्मः' शब्द 'घृ सेचने'[२७] धातु से मक्-प्रत्यय होकर निपातित[२८] है, जो प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है। इसका अर्थ ताप, शोधक, ऊर्जा आदि लिया जाता है। यज्ञिय व्यवहार करने से मनुष्य का प्राणमय कोश स्वभावतः शुद्ध होकर ऊर्जावान्

---

३२. अन्तोदात्तप्रकरणे मरुद्बृद्धादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् –अष्टा० महा० वा० ६.२.१०६॥

३३. पृ पालनपूरणयोः। –जुहोत्यादिगण, परस्मैपदी।
पृ प्रीतौ। –स्वादिगण, परस्मैपदी।
पृङ् व्यायामे । तुदादिगण, आत्मनेपदी॥

३४. चितः॥ –अष्टा० ६.१.१६३॥

३५. जुहोत्यादिगण, उभयपदी॥

३६. ञ्नित्यादिर्नित्यम्॥ –अष्टा० ६.१.१९७॥

३७. भ्वादिगण, आत्मनेपदी।

३८. धातोः॥ –अष्टा० ६.१.१६२॥

३९. अष्टा० ८.१.२८॥

४०. निपाताः आद्युदात्ताः॥ फिट्० ८०॥

४१. जुहोत्यादिगण, परस्मैपदी।

४२. धातोः॥ –अष्टा० ६.१.१६२॥

४३. अष्टा० ८.१.२८॥

४४. भ्वादिगण, उभयपदी।

४५. अष्टा० ६,२.१८॥

४६. अष्टा० ६.१.२२३॥

४७. अनुदात्तं पदमेकवर्जम्॥ –अष्टा० ६.१.१५८॥

होता है, जो उसे न केवल उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है अपितु उसके चेहरे को विशेष आभा-मण्डल से भी सुशोभित करता है। यज्ञिय व्यवहार का व्यक्तित्व विकास में यह चौथा योगदान है।

**१०. घर्मः + असि = घर्मोऽसि** – इन दोनों पदों के संहिता-पाठ में 'मः' उदात्त की 'अ' अनुदात्त के साथ पूर्वरूप-एकादेश-सन्धि[२९] होकर 'मः' ऐसा स्वरित-स्वर वाला[३०] बन जाता है। प्रातिशाख्य की भाषा में यह अभिनिहित-स्वरित[३१] है। जिसे 'पृथिव्यसि' की भाति ही 'घर्मोऽसि' इस प्रकार अर्ध-समकोण (वक्ररेखा) के चिह्न से दर्शाया गया है।

**११. विश्वधाः** – 'विश्व' शब्दपूर्वक 'डुधाञ् धारणे' धातु से असुन्-प्रत्यय होकर – 'विश्व +धा + असुन् + सु = विश्वधाः' ऐसा समस्त पद बनता है। उपपदसमास होने के कारण उत्तरपद को प्रकृति-स्वर प्राप्त था। परन्तु भाष्यवार्तिक[३२] से पूर्वपद को अन्तोदात्त हो गया क्योंकि वेद में 'विश्वधाः' ऐसा ही रूप उपलब्ध होता है। *लोक में शब्द की सिद्धि के लिए व्याकरण का अनुगमन होता है और उसके अनुसार ही उसे शुद्ध अथवा अशुद्ध कोटि में रखते हैं; परन्तु वेद में वैदिक पद स्वतः प्रमाण से सिद्ध होते हैं, अतः वे जिस रूप में वेद में प्रयुक्त हुए हैं, उन्हें वैसा ही सिद्ध करने के लिए हमें व्याकरण के नियमों में वार्तिक आदि का निवेश करना पड़ता है।*

'विश्वधाः' का अर्थ हुआ 'विश्व को धारण करनेवाला'। यज्ञिय व्यवहार से जब व्यक्ति 'पृथिवी = उदारहृदय वाला, विस्तृत' हो जाता है तो समस्त चराचर को स्वयं में समाहित करने का भाव भी उसमें विकसित हो जाता है। यह व्यक्तित्व विकास में यज्ञिय व्यवहार का पाँचवाँ योगदान है।

**१२. परमेण, धाम्ना, दृꣳहस्व** – पृ[३३] + अमच् + टा = परमेण, 'परम' प्रातिपदिक चित्-प्रत्यान्त[३४] होने से अन्तोदात्त है। डुधाञ् धारणपोषणयोः[३५] + मनिन् + टा = धाम्ना, नित्-प्रत्ययान्त[३६] होने आद्युदात्त है। दृह दृहि वृद्धौ[३७] + लोट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन = 'दृꣳहस्व', धातुस्वर से आद्युदात्त[३८] ; संहितापाठ में 'तिङ् ङन्तिङः'[३९] से सर्वानुदात्त – 'दृꣳहस्व'। यज्ञिय व्यवहार से विकसित उपर्युक्त पाँचों गुणों से युक्त व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को स्वयं क्या लाभ होता है? वेद उसके विषय में कहता है कि वह इस संसार में उत्तमोत्तम 'परम-धाम' अर्थात् पद, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त करता हुआ निरन्तर बढ़ता है और इसी यज्ञिय-व्यवहार से वह 'परम-धाम' अर्थात् मोक्ष का पात्र भी बन जाता है।

**१३. मा, ह्वाः** – 'मा' पद निपात है, अतः आद्युदात्त[४०] होने से निषेधार्थक है। 'ओहाङ् त्यागे'[४१] + लुङ् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन = 'ह्वाः', धातुस्वर से आद्युदात्त[४२]; संहितापाठ में 'तिङ् ङन्तिङः'[४३] से सर्वानुदात्त – 'ह्वाः'। वेद का आदेश है कि व्यक्तित्व-विकास में सहायक इस यज्ञिय व्यवहार का परित्याग नहीं करना चाहिए।

**१४. यज्ञपतिः, मा, ह्वार्षीत्** – यज्ञस्य पतिः यज्ञपतिः। 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'[४४] धातु से नङ् प्रत्यय होकर 'यज्ञ' शब्द प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त 'यज्ञः' हुआ। ऐश्वर्यवाचक पति शब्द के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास होकर 'यज्ञपतिः' शब्द 'पत्यावैश्वर्ये'[४५] सूत्र से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर हो गया, अर्थात् समास होने पर 'समासस्य'[४६] सूत्र से प्राप्त अन्तोदात्त स्वर न होकर पूर्वपद 'यज्ञः' में ही उदात्त स्वर बना रहा। 'ज्ञ' उदात्त को छोड़कर शेष सभी 'य, प, ति' अनुदात्त हो गए।[४७] उदात्त 'ज्ञ' के पूर्ववर्ती अनुदात्त 'य' को 'सन्नतर=निघात'

४८. उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः॥ –अष्टा० १.२.४०॥

४९. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः॥ –अष्टा० ८.४.६६॥

५०. स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्॥ –अष्टा० १.२.३९॥

५१. पत्यावैश्वर्ये॥ –अष्टा० ६.२.१८॥

५२. अष्टा० ६.१.२२३॥

स्वर 'यु' हो गया[४८] , परवर्ती अनुदात्त 'प्' को उदात्ताश्रित स्वरित 'प' हो गया[४९] तथा स्वरित 'प' के परवर्ती अनुदात्त 'ति' को प्रचय[५०] होकर 'युज्ञपतिः' – इस प्रकार का वैदिक पद बन गया।

यहाँ 'युज्ञपतिः' इस समस्त पद में 'युज्ञ' इस पूर्वपद में उदात्त स्वर होने से यज्ञ की प्रधानता है। यज्ञपति अर्थात् 'यज्ञिय व्यवहार से ऐश्वर्यवान् विद्वान् लोग अथवा स्वयं सृष्टि-यज्ञ के अधिष्ठाता परमेश्वर'। जो व्यक्ति स्वयं यज्ञिय व्यवहार करता है उसे विद्वान् और परमेश्वर दोनों ही चाहते हैं, दोनों ही उसका मार्गदर्शन करने में सदैव तत्पर रहते हैं।

**१५. पति शब्द के साथ समास** – किसी पद का जब पति शब्द के साथ समास होता है तो उसमें पति शब्द दो अलग-अलग प्रकार के अर्थों को अभिव्यक्त करता है–१. स्वामित्व (Owener) – भूपतिः = भू-माफिया, २. अभिरक्षक (Care-taker, Custodian) – राष्ट्रपतिः = राष्ट्र की देख-रेख करने वाला, राष्ट्र के ऐश्वर्य से ऐश्वर्यवान्। यदि ऐश्वर्यवान् के अर्थ में पति शब्द का समास होता है तो उस दशा में पूर्व पद के अर्थ की प्रधानता रहती है और उदात्त स्वर भी उसी पूर्वपद पर होता है।[५१] स्वामित्व या आधिपत्य के अर्थ में 'समासस्य'[५२] सूत्र से अन्तोदात्त होकर उदात्त स्वर पति शब्द में रहता है।

## गुरुकुल प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषिउद्यान, अजमेर में संस्कृत भाषा, पाणिनीय व्याकरण, वैदिक दर्शन, उपनिषदादि के अध्ययन हेतु प्रवेश आरम्भ किये गए हैं। इन्हें पढ़कर वैदिक विद्वान्, उपदेशक, प्रचारक बन सकते हैं। कम से कम दसवीं कक्षा उत्तीर्ण १६ वर्ष से बड़े युवकों को प्रवेश मिल सकता है। प्रवेशार्थी को पहले ३ माह का अस्थाई प्रवेश दिया जाएगा। इस काल में अध्ययन व अनुशासन में सन्तोषजनक स्थिति वाले युवकों को ही स्थाई प्रवेश दिया जाएगा। सम्पूर्ण व्यवस्था निःशुल्क है। गुरुकुल में अध्ययन के काल में किसी भी बाहर की परीक्षा को नहीं दिलवाया जाएगा, न उसकी अनुमति रहेगी। प्रवेश व अधिक जानकारी के लिए-

**चलभाष : ७०१४४४७०४० पर सम्पर्क कर सकते हैं। सम्पर्क समय- अपराह्न ३.३० से ४.३०।**

## दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय का पुनः आरम्भ २६ अगस्त को किया गया है। यह चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें। **- मन्त्री**

# उपनिषद् साहित्य में ईश्वर-चिन्तन

डॉ. रूपचन्द 'दीपक'

**ईश्वर का स्वरूप**

वैदिक संस्कृति के उपनिषद् साहित्य में ११ मुख्य उपनिषद् हैं ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। वे ईश्वर के स्वरूप की अलग-अलग रीति से व्याख्या करते हैं। कुछ शब्द विपरीत अर्थ वाले प्रतीत होते हैं। कुछ व्याख्याकार एक ही शब्द से भिन्न-भिन्न अर्थ निकालते हैं। परन्तु चारों वेद स्वयंसिद्ध हैं और सभी उपनिषद् बारम्बार प्रमाण हैं। अलग-अलग या अलग-अलग प्रतीत होने वाले उपनिषद् कथनों की वैदिक साक्ष्यों से तुलना करके सत्य को स्पष्ट किया जा सकता है, जो वैदिक जगत् में भी किया जाता है।

उपनिषद् वाङ्मय में ईश्वर का चिन्तन उपनिषदों का मुख्य विषय है। उपनिषदों से ईशस्वरूप के समस्त वचन एकत्र करना एक लेख का नहीं, अपितु पुस्तक का विषय होगा। अत: कुछ वचन लेते हुए ईश्वर का स्वरूप जानने का यत्न करेंगे। ऐसे वचन निम्नवत् प्रस्तुत हैं-

**१. ईश्वर सबका रक्षक है।**

यजुर्वेद (अध्याय ४०, मन्त्र-१७) में, जो ईशोपनिषद् (मन्त्र-१७) के रूप में भी है, उपदिष्ट है- **'ओ३म् खं ब्रह्म।'** इसमें ईश्वर का नाम **'ओ३म्'** बताया गया है। **'अव रक्षण'** धातु से 'अवतीत्योम्' इसी अर्थ में यह पद है, अर्थात् रक्षा करता है, इससे ओम् नाम है। ओ३म् शब्द का अर्थ है 'रक्षक'। यह ईश्वर का निज नाम है। अर्थात् ईश्वर सर्वरक्षक है।

**२. ईश्वर एक है।**

ईशोपनिषद् का प्रथम शब्द **'ईशा'** है, जिसका अर्थ है- 'ईश्वर से'। स्पष्ट है कि यह शब्द एकवचन में है। कठोपनिषद् (वल्ली-५, मन्त्र-१२) का वचन है- **'एको वशी'** अर्थात् सबको वश में रखने वाला 'एक' है। यह ईश्वर के लिए कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् (प्रपाठक-८, खण्ड-३, कण्डिका-३) कहता है- **'स वा एष आत्मा'** अर्थात् निश्चय से वह आत्मा (ईश्वर); यहाँ भी ईश्वर के लिए एकवचन निर्देश है।

कतिपय भारतीय शास्त्रों में ब्रह्मा-विष्णु-शिव के त्रिक का यह अर्थ बताते हुए उल्लेख है कि भगवान् ब्रह्मा जग-स्रष्टा एवं वेदोपदेष्टा हैं; भगवान् विष्णु जग-पालक हैं तथा भगवान् शिव जग-संहारक अर्थात् प्रलयकर्त्ता हैं। संस्कृत भाषाविद् जानते हैं कि 'ब्रह्मा' शब्द 'बृह बृहि वृद्धौ' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाने वाला'। 'विष्णु' शब्द 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'व्यापक'। 'शिव' शब्द 'शिवु कल्याणे' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'कल्याणस्वरूप एवं कल्याण करने वाला'। ये तीनों अर्थ किसी प्रकार एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं और तीन सत्ताओं का अर्थ नहीं देते। वस्तुत: ये एक ही ईश्वर के तीन गुण हैं और एक सत्ता के वाचक हैं। इन तीनों गुणों के होते हुए और सैकड़ों नामों के होते हुए ईश्वर एक है।

**३. ईश्वर सर्वव्यापक है।**

ईशोपनिषद् (मन्त्र-१) के अनुसार- **'ईशा वास्यम् इदं सर्वम्'** अर्थात् यह जो कुछ चराचर जगत् है, सब ईश्वर से व्याप्त है। दूसरे शब्दों में, ईश्वर सर्वव्यापक है। इसी उपनिषद् के मंत्र-८ में ईश्वर को **'परि अगात्'** एवं **'परिभू:'** बताया गया है, जिनके अर्थ क्रमश: 'सर्वत्र व्यापक' और 'सर्वोपरि'। आगे मन्त्र-१७ का वचन है- **'ओ३म् खं ब्रह्म'**। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में इस वचन का अर्थ करते हैं- **'आकाशमिव व्याप्तत्वात्**

**खम्**', अर्थात् आकाश की भाँति व्यापक होने से ईश्वर का नाम 'खम्' है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (अध्याय-३, मन्त्र-११) में ईश्वर को '**सर्वव्यापी**' कहा गया है, जो 'सर्वव्यापक' शब्द का ही एक रूपान्तर है। इसके आगे मन्त्र-१६ में ईश्वर को 'सर्वतः' कहा गया, जिसका अर्थ है- सब ओर से जो'। मन्त्र-२१ में '**सर्वगतम्**' कहा गया है, अर्थात् 'सर्वत्र गये हुए को'। ये सब वचन पुकार रहे हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है।

**४. ईश्वर सर्वन्तर्यामी है**

ईशोपनिषद् (मंत्र-५) में ईश्वर को '**तदन्तरस्य सर्वस्य**' कहा गया; जिसका अर्थ है कि ईश्वर सब जीवों के भीतर भी है, अर्थात् वह सर्वान्तर्यामी है।

**५. ईश्वर सर्वज्ञ है**

ईशोपनिषद् (मन्त्र- ८) में ईश्वर को '**कविः मनीषी**' कहा गया है, जिनके क्रमशः अर्थ हैं- सर्वज्ञ और सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला अर्थात् सर्वज्ञानी। मुण्डकोपनिषद् (मुण्डक-१, खण्ड-१, मन्त्र-९) में कहा गया है- '**यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः**' अर्थात् ब्रह्म (ईश्वर) सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, जिसका ज्ञानमय कर्म है। माण्डूक्योपनिषद् (मन्त्र-६) कहता है- '**एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञः**', अर्थात् यह सबका स्वामी (ईश्वर) सर्वज्ञ है।

**६. ईश्वर स्वयम्भू है**

ईशोपनिषद् (मन्त्र-८) में ईश्वर को '**स्वयंभूः**' कहा गया है। इस पद की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द सत्यार्थ-प्रकाश में कहते हैं- ''भू सत्तायाम्, 'स्वयम्' पूर्वक इस धातु से '**स्वयम्भू**' शब्द सिद्ध होता है। '**यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः**' आपसे आप ही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, इससे उस परमात्मा का नाम 'स्वयम्भू' है।

**७. ईश्वर अजन्मा है**

मुण्डकोपनिषद् (२.१.२) में ईश्वर के लिए 'अजः' शब्द आया है। ऋषि दयानन्द सत्यार्थ-प्रकाश में इस शब्द का अर्थ करते हुए कहते हैं, ''**कदाचिन्न जायते सोऽजः**'; स्वयं कभी जन्म नहीं लेता, इससे ईश्वर का नाम 'अज' है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४.४.२२) में भी वचन है, '**स वा एषा महानज आत्मा**', अर्थात् परमात्मा निश्चय ही महान् और अज है।

ईशोपनिषद् (मन्त्र-८) में ईश्वर को '**अकायम्**' कहा है। यदि कोई जन्म लेता है, तो उसका किसी-न-किसी प्रकार का शरीर अवश्य होता ही है। ईश्वर का कोई शरीर नहीं है; अर्थात् उसका जन्म नहीं होता; वह अजन्मा है। कठोपनिषद् (वल्ली-३, मन्त्र-१५), में ईश्वर को '**अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम् अव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च**' कहा गया है;

अर्थात् वह शब्द नहीं जो कान से ग्रहण हो सके, स्पर्श नहीं जो त्वचा से ग्रहण हो सके, रूप नहीं जो नेत्र से ग्रहण हो सके, रस नहीं जो जिह्वा से ग्रहण हो सके और गन्धवाला नहीं जो नासिका से ग्रहण हो सके, वह तो अव्यय और नित्य अर्थात् जन्म में न आनेवाला है। अतः स्पष्टतया वह अजन्मा है।

**८. ईश्वर अविनाशी है**

मुण्डकोपनिषद् (२.२.११) में ईश्वर को '**अमृतम्**' कहा गया है, जिसका अर्थ है- मृत्यु-रहित, यानी अविनाशी। छान्दोग्योपनिषद् (४.१५.१) में उन्हें '**अमृतम् अभयं ब्रह्म**' कहा गया, जो कि अविनाशी बताना ही है। कठोपनिषद् (५-१३) और श्वेताश्वतरोपनिषद् (६-१३) में उसे '**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्**' कहा गया अर्थात् 'नित्य जीवों में सर्वोपरि नित्य' और 'चेतन जीवों में सर्वोपरि चेतन'। यह पदावली निश्चिय से ईश्वर को अविनाशी निरूपित करती है।

**९. ईश्वर सर्वाधार है**

केनोपनिषद् (खण्ड-१, मन्त्र-२) में ईश्वर को '**प्राणस्य प्राणः**' कहा गया, अर्थात् वह प्राण का प्राण है। आगे (मन्त्र-८) में कहा गया- '**यत्प्राणेन न प्रणीति**

**येन प्राणः प्रणीयते**'। अर्थात् जो प्राण के व्यापार में नहीं आता अपितु जिससे प्राण अपना व्यापार करते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् (वल्ली-१, अनुवाक-५, मन्त्र-३) का वचन है- '**भूरिति वै प्राणः।**' यहाँ 'भू' अर्थात् ईश्वर और प्राण अर्थात् आधार, तात्पर्य हुआ कि ईश्वर आधार है। दूसरे शब्दों में, ईश्वर सर्वाधार है।

**१०. ईश्वर अनादि है**

ऐतरेय उपनिषद् (अध्याय-१, खण्ड-१, मन्त्र-१) का वचन है- '**स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।**' अर्थात् परमात्मा ने ईक्षण किया कि प्रजा को रचूँ। स्पष्ट है कि निरन्तर संसरण करते संसार में, प्रलयावस्था के क्षण को प्रारम्भिक क्षण रूप में मनन किया गया है, जिसके बाद सृष्टि-रचना हुई। दूसरे शब्दों में, परमात्मा अनादि तत्त्व के रूप में ईक्षण कर रहा था। निस्सन्देह उपनिषदों के दर्शन में ईश्वर अनादि तत्त्व है। जीव (दूसरा चेतन) और प्रकृति (उपादान तत्त्व) भी अनादि हैं अथवा नहीं?

कठोपनिषद् (३-२), मुण्डकोपनिषद् (३.१.१) एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् (४-६) में निम्न मन्त्र दिया है-

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**
**समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति**
**अनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।**

अर्थात् दो पक्षियों के तुल्य जीवात्मा और परमात्मा समान अर्थात् दोनों की भाँति अनादि वृक्ष पर रहते हैं, उन दोनों में से एक (जीवात्मा) वृक्ष के फल को स्वाद लेकर खाता है और दूसरा (परमात्मा) साक्षिरूप होकर केवल देखता है।

यह मन्त्र ऋग्वेद (मण्डल-१, सूक्त-१६४, मन्त्र-२०) में यथावत् द्रष्टव्य है। चार वेद स्वतः प्रमाण और सब उपनिषद् परतः प्रमाण हैं। अतः 'अनादि तत्त्व तीन हैं- ईश्वर, जीव और प्रकृति' यह वेदों का निष्कर्ष उपनिषद् वाक्यों से भी प्रतिध्वनित होना चाहिए। महान् ग्रन्थों में (उपनिषद् आदि) विरोधाभास नहीं हो सकता; रहस्य हो सकता है। यदि रहस्य-वाक्य का अर्थ अभिधा से न करके लक्षणा से किया जाए तो रहस्योद्घाटन भी हो जाता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् (१.४.१०) के एक अंश '**तद् आत्मानम् एव अवेद् अहं ब्रह्मास्मीति**' से ऐसा एक रहस्य-वाक्य '**अहं ब्रह्मास्मि**' लिया गया है। अभिधा के अनुसार इसका अर्थ बनता है-'मैं ब्रह्म हूं, अर्थात् जीव ब्रह्म है।' यह अर्थ लेने पर '**द्वा सुपर्णा**' नामक उपनिषद् वाक्य से भिन्न अर्थ आता है। अतः लक्षणा से अर्थ करना होगा। लक्षणा के लिए देखना होगा कि उपासक समाधि की स्थिति में है और उसे अपना ज्ञान नहीं है; उसे एकमात्र ईश्वर (ब्रह्म) का ज्ञान एवम् उसी की अनुभूति हो रही है। वह कहना चाहता है कि मैं ब्रह्मस्थ हूं। इसी को उपनिषद् ने कहा- '**अहं ब्रह्मास्मि**' इसका उपयुक्त अर्थ बना कि 'मैं ब्रह्मस्थ हूं।'

छान्दोग्योपनिषद् (६.१६.३) में दूसरा रहस्य-वाक्य है-'**तत्त्वमसि**'। अभिधा में इसका अर्थ है- तत् (वह ब्रह्म), त्वम् (तू), असि (है) अर्थात् जीव! 'तू ब्रह्म है'। यह अर्थ भी '**द्वा या सुपणा**' नामक उपनिषद् वाक्य से भिन्न है। इसका समाधान भी लक्षणा से होता है और तब अर्थ बनता है- 'जीव ब्रह्ममय है'। इसी उपनिषद् का एक अन्य रहस्य-वाक्य (३.१४.१) है- '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**'; इसका अभिधा में अर्थ बनता है कि 'यह सब ब्रह्म है।' '**द्वा सुपर्णा**' से भिन्न होने के कारण इसका अर्थ भी लक्षणा से लेना होगा- 'यह सब ब्रह्ममय या ब्रह्म से युक्त है।'

अतः उपनिषदों के अनुसार ईश्वर अनादि है। जीव और प्रकृति भी अजन्मा होने के कारण अनादि है।

**११. ईश्वर अनन्त है**

तैत्तिरीयोपनिषद् (२.१.१) का वचन है- '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**', अर्थात् सत्यस्वरूप एवं ज्ञानस्वरूप जो ब्रह्म है, वह अनन्त है।

**१२. ईश्वर पवित्रस्वरूप है**

ईशोपनिषद् (मन्त्र-८) में ईश्वर को **'शुद्धमपापविद्धम्'** कहा गया है अर्थात् वह पवित्र-स्वरूप है, स्वरूप से पवित्र होने के कारण उसमें अपवित्रता कभी आ ही नहीं सकती। साथ ही वह पाप से नहीं बिंधा अर्थात् पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकता।

**१३. ईश्वर दुःखविनाशक है**

तैत्तिरीयोपनिषद् (१.५.३) का वचन है- **'भुव इत्यपानः'**। ऋषि दयानन्द सत्यार्थ-प्रकाश में इस शब्द का अर्थ करते हैं कि **'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः'**, जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं, इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुव' है।

ईश्वर में लेशमात्र भी दुःख नहीं और वह सबके दुःख मिटाने से दुःखविनाशक है।

**१४. ईश्वर चेतनमात्र है**

श्वेताश्वतरोपनिषद् (६-१३) में ईश्वर को **'चेतनश्चेतनानाम्'** कहा गया है, अर्थात् वह चेतन जीवों में सर्वोपरि चेतन है। मुण्डकोपनिषद् (२.१.२) के अनुसार, **'अप्राणो ह्यमनाः'** अर्थात्, वह प्राण-रहित और मन से शून्य है। वह केवल चेतन मात्र है।

**१५. ईश्वर अलिंग है**

श्वेताश्वतरोपनिषद् (६-९) में ईश्वर को कहा गया- **'नैव च तस्य लिंगम्'** अर्थात् उसका अनुमान कराने वाला जगत् में कोई चिह्न नहीं है। वह सबका निमित्त कारण है; किन्तु उसका कोई कारण नहीं है। वह अलिंग है।

**१६. गतिशून्य गतिदाता**

ईशोपनिषद् (मन्त्र-४,५) कहते हैं-

**अनेजदेकं मनसो जवीयो**
**नैनद्देवाऽआप्नुवन् पूर्वमर्षत्।**
**तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्**
**तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।**
**तदेजति तन्नैजति...।**

अर्थात् ब्रह्म अचल, एकरस, मन से अधिक वेगवाला, सब जगह पहले से पहुँचा हुआ, अचल होकर भी दौड़ते हुए अन्यों को उल्लंघन किये हुए है। वह गति देता है, स्वयं गति में नहीं आता। उसकी गति की बातें आलंकारिक हैं, वह गतिशून्य गतिदाता है।

**१७. ईश्वर लक्ष्य है**

मुण्डकोपनिषद् (२.२.४) का वचन है-

**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।**

प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है; बस जिज्ञासु को आलस्य-रहित होकर चित्त को एकाग्र करना है, ब्रह्म की प्राप्ति हो जाएगी; लक्ष्य वेधना है।

**१८. ईश्वर पूर्ण है**

बृहदारण्यकोपनिषद् (५.१.१) के अनुसार-

**ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।**

ईश्वर पूर्ण है; जगत्पूर्ण है; पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण जगत् उदित होता है; पूर्ण जगत् से पूर्ण को लेकर प्रलय में पूर्ण ब्रह्म शेष रह जाता है।

**१९. ईश्वर ज्ञेय है**

श्वेताश्वतरोपनिषद् (३-८) कहता है-

**'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्**
**आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।**
**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति**
**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।'**

संक्षिप्त अर्थ- मैं इस (ईश्वर) को जानता हूँ और उसे जानकर ही दुःखदायी मृत्यु को उल्लंघन कर जाते हैं। मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

**२०. ईश्वर प्राप्य है**

श्वेताश्वतरोपनिषद् का मन्त्र (३-१३) का अंश है- **'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा'**, अर्थात् सबका अन्तर्यामी परमात्मा अंगुष्ठ परिमित स्थान में ध्यानयोग द्वारा योगियों को प्राप्त होता है।

**वैदिक उपदेशक विद्यालय, लखनऊ**

# संस्था समाचार

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित योग साधना एवं स्वाध्याय शिविर २९ अक्टूबर से ५ नवम्बर तक विधिवत् सम्पन्न हुआ। इस शिविर में उत्तरप्रदेश, राजस्थान, झारखण्ड आदि प्रान्तों से ५९ शिविरार्थियों ने भाग लिया। जिसमें ४१ पुरुष १८ महिलाएँ थीं। गुरुकुल ऋषि उद्यान के ब्रह्मचारियों के द्वारा प्रात:काल का मन्त्र पाठ, भ्रमण श्लोक गायन, रात्रि कालीन मन्त्र पाठ तथा शिविर के कार्यों में सहयोग किया गया। आचार्य कर्मवीर व ब्र. हरीश द्वारा प्रात: आसन-व्यायाम करवाया तथा अन्य शिविर की व्यवस्थाएं देखी गई तथा आचार्य कर्मवीर के द्वारा ज्ञान, कर्म, उपासना की कक्षा भी ली गई। स्वामी विष्वङ् के द्वारा प्रात:काल की ध्यान-उपासना व योग दर्शन का अध्यापन कराया गया। आचार्य विद्यानन्द के द्वारा सांख्य दर्शन के चौथे अध्याय का अध्यापन कराया गया। सभा मन्त्री मुनि सत्यजित् के द्वारा शंका-समाधान और आत्मनिरीक्षण की कक्षा ली गई। आचार्य शक्तिनन्दन के द्वारा सायं ध्यान-सन्ध्या कराई गई। श्रीमान् वासुदेव के द्वारा शिविरार्थियों से श्रमदान करवाया गया। यह शिविर पूर्णत: मौन था। शिविरार्थियों के फोन जमा कर लिए गए थे। समापन के दिन शिविरार्थियों ने अपने-अपने अनुभव सुनाए तथा सुझाव दिया। मुनि सत्यजित् के द्वारा उनका समाधान किया गया। जिसे आप परोपकारी सभा के यूट्यूब चैनल पर देख सकते हैं।

आचार्य शक्तिनन्दन ने बताया कि हम विद्वानों से सुनते हैं कि सुख, शान्ति, आनन्द की प्राप्ति परमात्मा को जानने से ही होती है। वेद में परमात्मा की प्राप्ति के लिए ज्ञान को ही प्रमुख साधन कहा है। हमारे ज्ञान के बिगड़ने और अच्छे होने से हमारे कर्म में बिगाड़ और सुधार होता है। ज्ञान के बिना हम दु:खों को दूर और सुखों को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वेद मन्त्र में कहा है कि जिसने सभी प्रकार के तप, शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक तप नहीं किया, उसे परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती और तप का संबन्ध ज्ञान से है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना यह भी बहुत बड़ा तप है। ज्ञान प्राप्ति रूपी तप से हम ठीक उपासना कर पाएंगे और परमेश्वर की प्राप्ति हो पाएगी।

आचार्य कर्मवीर ने न्यायदर्शन के सूत्रों के माध्यम से बताया कि दु:ख का कारण क्या है? दु:ख का कारण जन्म है। यदि जन्म नहीं लेते हैं तो सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि कोई भी दु:ख नहीं होता, प्रकृति के बन्धनों में बँधना ही दु:ख है। जन्म का कारण क्या है? जन्म का कारण प्रवृत्ति है। राग द्वेष और मोह यह दोष हैं। इन्हीं दोषों से प्रेरित होकर हम शरीर, वाणी और मन से कर्मों को करते हैं, यह प्रवृत्ति है। जड़ पदार्थ के नापने का पैमाना सबका एक ही होता है जैसे दूध एक लीटर राजस्थान में या भारत में या कहीं भी एक ही होगा पर चेतन का पैमाना किसी व्यक्ति के लिए सबका अलग-अलग होता है। कोई इस व्यक्ति को ठीक कहता है कोई इसी व्यक्ति को गलत कहता है, कोई कुछ और ही कहता है। क्षण-क्षण में हमारा पैमाना भी बदलता रहता है। हमारे अन्दर जैसे राग-द्वेष आदि उभरते हैं। उस हिसाब से हम किसी व्यक्ति को गलत या ठीक कहते हैं। सब का कारण अविद्या है। यदि अविद्या हट जाएगी तो दोष भी हटेंगे और दोष के हटने से प्रवृत्ति हटेगी। इसके हटने से जन्म हटेगा और जन्म के हटने से दु:ख भी हट जाएँगे।

मुनि सत्यजित् महर्षि के २००वें जन्मदिवस के अवसर पर महर्षि के गुणों पर प्रकाश डाल रहे हैं। महर्षि ने ईश्वर को लेकर बहुत ही बातें कही हैं। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य ईश्वर को जानना, जनाना, ईश्वर की सच्ची भक्ति रही। इसी सन्दर्भ में स्तुति, प्रार्थना, उपासना इन तीन शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ स्तुति अर्थात् ईश्वर के गुणों को जानना। ईश्वर के गुणों को कहना। ईश्वर के गुणों को सुनना। यह ईश्वर की स्तुति है। साथ ही सत्य भाषण करना यह भी स्तुति है। यदि

ईश्वर के गुणों का ज्ञान, कथन और श्रवण सत्य है तो यह ईश्वर की वास्तविक स्तुति है। ऐसे ही हम ईश्वर के स्थान पर अन्य पदार्थों के भी गुणों को यदि सत्य रूप से जानते हैं, कहते हैं या सुनते हैं तो वह उस पदार्थ की स्तुति कही जाएगी। विज्ञापन करने वाली कम्पनियाँ इसका बहुत ही प्रयोग करती है। लोग पदार्थों के गुणों को जानकर उसे खरीद लेते हैं। महर्षि ने इन तीनों को अलग-अलग माना है और इन तीनों का फल भी अलग-अलग बताया है। ईश्वर की स्तुति करने से ईश्वर में प्रीति आदि होती है।

अतिथि होता अजमेर निवासी परोपकारी सभा के प्रत्येक कार्य में सहयोग करने वाले वरिष्ठ कार्यकर्ता श्रीमान् वासुदेव का ७५वाँ जन्मदिवस प्रातःकाल सपत्नीक यज्ञ कर वा जन्मदिवस की आहूति देकर मनाया गया। आपने सभी गुरुकुलवासी तथा आश्रमवासियों के लिए विशिष्ट प्रातराश की व्यवस्था की। मुनि सत्यजित् आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया तथा आपसे वानप्रस्थ लेने का अनुरोध किया गया। **- आचार्य ज्ञानचन्द**

## प. पू. संत सम्राट् महर्षि दयानन्द जी सरस्वती

**सुन्दरलाल चौधरी**

**प.** परम पूज्य परमात्मा की असीम कृपा में, महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को नमस्कार।
**पू.** पूजा के योग्य बना दिया भारत को, सद्गुरु विरजानन्द दण्डी का भू पर उपकार।
**सं.** संत साधक वैदिक धर्म के प्रचारक, आर्यसमाज संस्थापक आपका विराटकार।
**स.** सम्राटों के सम्राट् विराट् व्यक्तित्व, वेदों के ज्ञाता हिन्द का किया उद्धार।
**म.** महर्षि युग-ऋषि आपसे भारत गौरवान्वित, राष्ट्र नवनिर्माण से था प्यार।
**द.** दशों दिशाएँ आज गुंजित हैं कृण्वन्तो विश्वमार्यम् से, पंच यज्ञ प्रचार।
**या.** याद करा दी वैदिक संस्कृति, लुप्त आदर्शों को आपने दिया उभार।
**न.** नमन कोटिशः भारत के आर्यवीर जनों को, भव्य ऋषि मेला १४०वाँ त्यौहार।
**न्.** नव सृजन के प्रणेता भावी पीढ़ी के भाग्यविधाता, विश्व में हिन्द को विश्व गुरु अधिकार
**द.** दमन किया दानववृत्तियों का, जड़ पूजा अन्धविश्वास शोषित व नारियों का आत्म उद्धार।
**जी.** जीवन दिव्य बने सभी का दस नियमों से, तथा सोलह संस्कारों से हो परिष्कार।
**स.** सत्य सार जाने मनुज, निराकार ओ३म् नाम खास ईश्वर, वेदों सें ही जीवन सुधार।
**र.** रक्त की हर बूंद देश सेवा में लगे, संत शहीद समाज सुधारकों के सपने हों साकार।
**स्.** समूची विश्व की मानव जाति तन-मन-धन से, ज्ञानकर्म भक्ति से करे, आत्म-शृंगार।
**व.** वसु आठ सम सेवाधारी बनें, ईश-कृति बनी रहे, ऋषि-खेती गो-संवर्धन पर्यावरण सदाचार।
**ती.** तीन ताप से सब मुक्त हों, आर्यजन पूज्य मुनि पतञ्जलि जी का "सुन्दर" कार।

## वधु चाहिए

५ फुट ९ इंच, रंग-गोरा, जन्म ०८-०२-१९९५, योग्यता-बी.ए., एम.ए., एम.एम.वी., कम्प्यूटर, युवक के लिए सुन्दर, सुशील, आर्य एवं पढ़ी-लिखी संस्कारित कन्या की आवश्यकता है। इच्छुक सम्पर्क करें। सम्पर्क सूत्र - ९३५१३१४४२१, ८९५५०२९७२२

# सृष्टि संवत् की एकरूपता

## परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित संवाद

### १६-१७ दिसम्बर २०२३, ऋषि उद्यान, अजमेर

**विषय - सृष्टि संवत् की एकरूपता**

सृष्टि संवत् को लेकर कुछ समय से प्रचार माध्यमों में मत भिन्नता अधिक आ रही है। इससे आर्यजनों में संशय की स्थिति उत्पन्न हो रही है। ऐसे में यह उचित व आवश्यक हो गया है कि सभी पक्ष आमने-सामने बैठकर परस्पर संवाद करें एक-दूसरे की बात को पूरा सुनकर प्रश्नों के उत्तर देकर जो प्रामाणिक सिद्ध हो उस एक सृष्टि संवत् का निर्णय करें। इसके लिए महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ने इस संवाद का आयोजन किया है। इस विषय के उभयपक्षीय विद्वानों के सम्मिलित होने की स्वीकृति हो गई है। ये विद्वान् हैं- १. आचार्य दार्शनेय लोकेश, नोयडा, २. आचार्य रवीन्द्र, हमीरपुर, ३. स्वामी ब्रह्मानन्द, वडलूर, ४. डॉ. वसन्तराव मदनसुरे, अकोला, ५. प्रो. रविप्रकाश आर्य, रोहतक (आभासी)। इस संवाद के बारे में विस्तृत जानकारी यहाँ प्रस्तुत है-

**संवाद निर्णायक समिति**

इस प्रक्रिया के संचालन के लिए ५ सदस्यीय समिति का गठन किया गया है। समिति के सदस्य निम्नलिखित हैं-

१. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, संरक्षक परोपकारिणी सभा।

२. डॉ. वेदपाल, संरक्षक परोपकारिणी सभा।

३. आचार्य विरजानन्द दैवकरणि (सदस्य, परोपकारिणी सभा)

४. श्री सज्जनसिंह कोठारी (पूर्व लोकायुक्त व न्यायाधीश)

५. मुनि सत्यजित् (संयोजक, मन्त्री, परोपकारिणी सभा)

**समिति की भूमिका**

१. संवाद प्रक्रिया का सुचारु निष्पक्ष रूप से संचालन।

२. आवश्यकता अनुसार स्पष्टीकरण पूछना।

३. विशिष्ट श्रोताओं द्वारा कोई प्रमाण प्रस्तुत करना हो, कोई प्रश्न रखना हो तो उसकी स्वीकृति समिति के द्वारा यथासमय दी जा सकती है।

**संवाद प्रक्रिया :-**

१. प्रथम चरण में पूर्व निर्धारित विद्वान् अपने-अपने मन्तव्य/प्रतिज्ञा/पक्ष की स्थापना करेंगे और प्रमाण प्रस्तुत करेंगे।

२. दूसरे चरण में विद्वान् परस्पर एक-दूसरे के मन्तव्य को समझने के लिए कुछ पूछना हो तो पूछ सकते हैं।

३. तीसरे चरण में ये विद्वान् अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मन्तव्य और प्रस्तुत प्रमाणों का परीक्षण/प्रतिवाद/खण्डन करेंगे, प्रश्न करेंगे और सम्बन्धित विद्वान् उसका प्रत्युत्तर देंगे। यह प्रक्रिया आवश्यकतानुसार एक से अधिक बार चल सकती है। सभी निर्धारित विद्वानों को बोलने के लिए पर्याप्त समय दिया जायेगा। इसके बाद श्रोताओं के प्रश्न आदि रखे जा सकते हैं।

४. चौथे चरण में विद्वान् चाहें तो अपना (परिवर्धित/परिमार्जित) मन्तव्य पुनः प्रस्तुत करेंगे।

५. संचालक मंडल कभी भी किसी भी विद्वान् से प्रश्न पूछ सकता है, स्पष्टीकरण माँग सकता है।

**कुछ सामान्य नियम**

१. इस संवाद का उद्देश्य सत्यान्वेषण है, हार-जीत नहीं। अत: वक्ता एक-दूसरे को सहृदयता- सद्भाव- धैर्य से सुनेंगे, वक्तव्य में भूल होने पर वक्ता को उसे सुधारने का अवसर देंगे। परस्पर एक-दूसरे पर किसी प्रकार की व्यक्तिगत टिप्पणी नहीं करेंगे। प्रतिपक्ष का उपहास, अपमान, उपेक्षा नहीं करेंगे। अपनी व्यक्तिगत प्रशंसा, बुद्धिमत्ता का कथन नहीं करेंगे। चर्चा विषय व सम्बन्धित प्रमाणों पर तथ्यात्मक रहेगी, व्यक्ति को आधार बनाकर चर्चा नहीं होगी। किन्हीं जीवित - अजीवित अविद्यमान व्यक्तियों पर भी कोई अनुकूल या प्रतिकूल टिप्पणी वा चर्चा नहीं होगी। श्रोतागण न तो बीच में बोलेंगे, न ताली बजायेंगे।

२. समिति में ५ सदस्य होंगे, ये सभी प्रक्रियाओं का संचालन करेंगे। प्रक्रिया के संचालन में समिति का निर्णय अन्तिम होगा।

३. समिति इस पूरी प्रक्रिया में कभी भी स्पष्टीकरण पूछ सकती है।

४. समिति को यदि यह लगता है कि कोई पक्ष विषयांतर कर रहा है या असम्बद्ध बात/प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है, तो वे इस बात की ओर संकेत कर सकते हैं और आवश्यकता लगने पर वे वक्ता को रोक भी सकते हैं। वे वक्ता के लिए समय का निर्धारण कर सकते हैं और आवश्यकता अनुसार निर्धारित समय को कम कर सकते हैं, बढ़ा सकते हैं।

५. संवाद में उपस्थित अन्य विद्वान् प्रासंगिक प्रश्न लिखकर कर सकेंगे, जिसका समाधान सम्बन्धित विद्वान् करेंगे। उनको सीधे-सीधे प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं होगा, लेकिन संचालक समिति की अनुमति हो तो उनको अवसर दिया जा सकता है। उपस्थित अन्य सम्मान्य विद्वान् (यदि मुख्य वक्ता ऐसा चाहें तो) किसी भी पक्ष का सहयोग कर सकते हैं, लेकिन संवाद के समय बीच में नहीं बोल सकते हैं।

६. आवश्यकता पड़ने पर संचालक समिति प्रक्रिया में फेर-बदल कर सकती है।

७. सम्बद्ध समर्थक प्रमाण-ग्रन्थ आदि सभी स्वयं लेकर आयेंगे।

आर्यजगत् के सूचनार्थ यह आवश्यक/उपर्युक्त होगा कि इस पूरी प्रक्रिया और तदनुसार निकले निष्कर्ष को अभिलिखित कर परोपकारी पत्रिका में यथावत् छापा जायेगा। इस लेख को सबसे पहले वक्ता विद्वानों को दिखा कर उनसे विचार/सहमति ले ली जाएगी, आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के बाद उसे जनसामान्य के लिए प्रकाशित कर दिया जायेगा।

संवाद की पूरी कार्यवाही की दृश्य-श्रव्य (ऑडियो-वीडियो) रिकॉर्डिंग की जाएगी। सामान्य परिस्थितियों, निकट भविष्य में, कोई भी विद्वान् इसका सार्वजनिक प्रकाशन नहीं करेगा। प्रकाशन का अधिकार परोपकारिणी सभा का रहेगा।

यदि आप श्रोता के रूप में इस संवाद प्रक्रिया में भाग लेना चाहते हैं तो आपको इसकी पूर्व सूचना ऋषि उद्यान अजमेर कार्यालय को देनी होगी। सीमित संख्या में सामूहिक निवास की व्यवस्था उपलब्ध है। कृपया बिना सूचना व बिना स्वीकृति के न आएं ताकि व्यवस्था बनी रहे, आपको और आयोजकों को असुविधा न हो। सादर

**चलभाष : 9314394421** **ई-मेल : psabhaa@gamail.com**

**मुनि सत्यजित्**

**संयोजक-संवाद प्रक्रिया**

**मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

**चलभाष : 9414006961**

# परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्य पर

| पुस्तक का नाम | पृ. सं. | वास्तविक मूल्य रुपये | छूट के साथ मूल्य रुपये |
|---|---|---|---|
| ऋग्वेद संहिता | ९०० | ५०० | ४०० |
| अथर्ववेद संहिता | ५५० | ४०० | ३०० |
| ऋग्वेद भाष्य नवम भाग | ४०० | ३०० | २२५ |
| पञ्चमहायज्ञ विधि | ६२ | २० | १५ |
| वैदिक संध्या मीमांसा | १०७ | ४० | ३० |
| महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग) | १३९२ | ८०० | ५०० |
| महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र | ३३६ | २०० | १०० |
| कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग) | ९३८ | ९५० | ६०० |
| डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग) | ८१४ | ५०० | २५० |

**यजुर्वेद भाष्य ( महर्षि दयानन्द सरस्वती ) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-**
**डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-**
**पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382**

---

**VEDIC PUSTKALAYA**
**0510800A0198064**
**1342679A**
**0510800A0198064.mab@pnb**

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु
खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
**(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)**
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-
**00080000100067176**
**IFSC - PUNB0000800**
**UPI ID :**
**0510800A0198064.mab@pnb**

---

## भूल-सुधार

परोपकारी नवम्बर प्रथम-२०२३ के पृष्ठ-५ पर महर्षि की निर्वाण तिथि ३० अक्टूबर १८३० छप गई है। कृपया इसे ३० अक्टूबर १८८३ पढ़ें।

त्रुटिपूर्ण मुद्रण के लिए खेद है।

- सम्पादक

# संस्था की ओर से....

## क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। **आपका दान ८०जी ( आयकर की धारा ) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।**

***अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।***

### अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। राशि जमा करने के पश्चात् दूरभाष द्वारा कार्यालय को अवश्य सूचित करें। दूरभाष - 8890316961

### परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-10158172715 IFSC-SBIN0031588

email : psabhaa@gmail.com सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961

ऋषि मेले में आयोजित वेद गोष्ठी में पत्र वाचन करते हुए डॉ निरंजन साहू, संचालन करते आचार्य शक्तिनंदन, डॉ आशुतोष पारीक, अध्यक्षता करते हुए श्री नरेश कुमार धीमान एवं रामस्वरूप रक्षक।

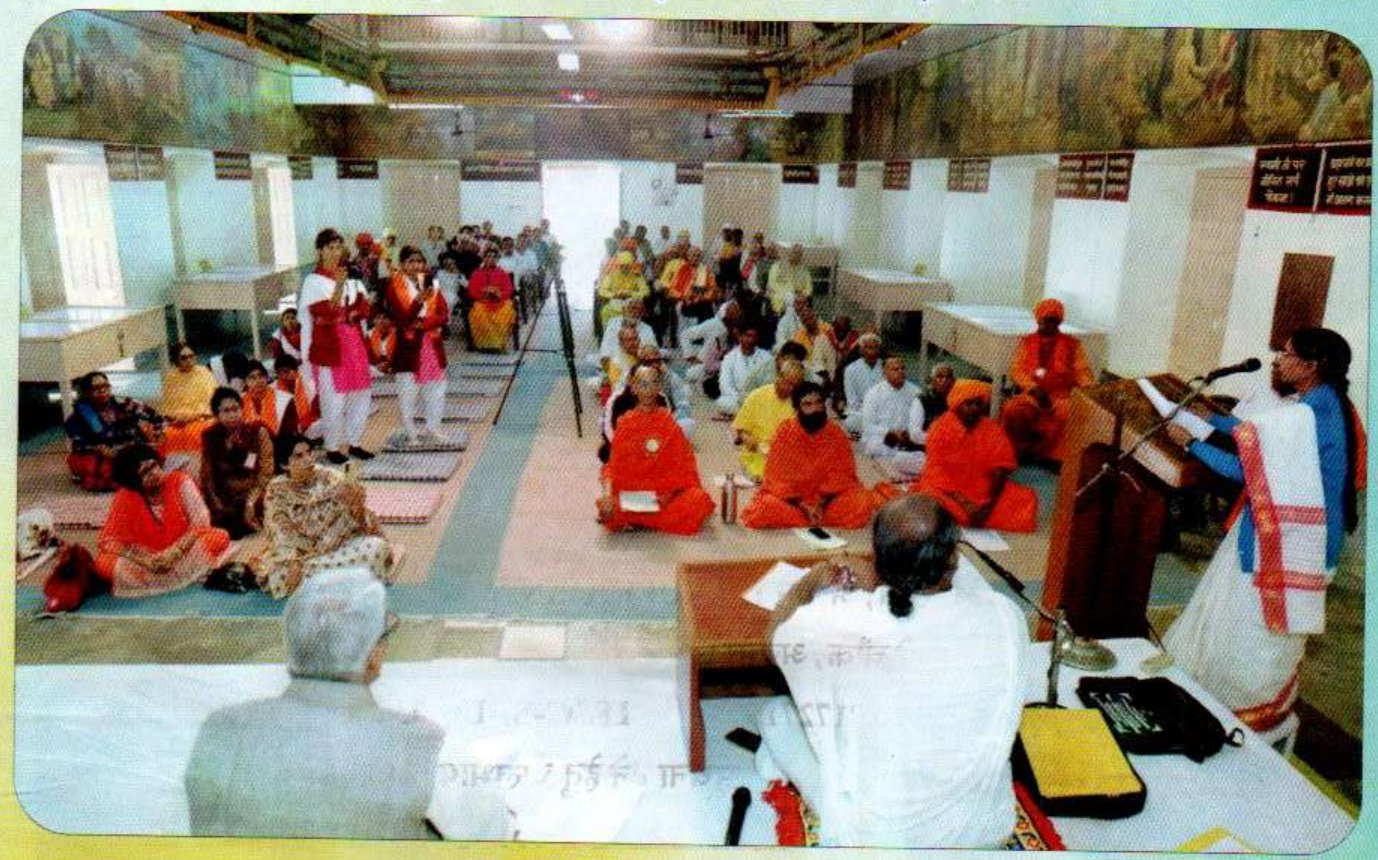

वेद गोष्ठी उद्घाटन सत्र।

आर जे/ए जे/80/2021-2023 तक प्रेषण : ३०-३१ नवम्बर २०२३ आर.एन.आई. ३९५९/५९

# ऋषि मेले पर आयोजित कार्यक्रम में उपस्थित जनसमूह

प्रेषक:

**परोपकारिणी सभा**

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर ( राजस्थान ) ३०५००१

सेवा में,

आजी

15

दिल्ली- 30.

9540/ 158

थे, हनुमान रोड, नई

डाक टिकिट